RNI No. MPHIN/2008/25073 डाक प्रेषण : प्रतिमाह की 7 तारीख डाक पंजीयन क्रमांक मालवा डिवीजन/324/2019-2021

AISECT GROUP OF UNIVERSITIES
India's Leading Higher Education Group
CHHATTISGARH | MADHYA PRADESH | JHARKHAND | BIHAR

AJEE
AISECT GROUP OF UNIVERSITIES JOINT ENTRANCE EXAM

#UnlockingPotential

AISECT Group of Universities is India's leading higher education group that provides world-class and affordable universities. The AISECT group has over three decades of unmatched experience in skill development and job placement.

Prominent Features

- Huge in-house funding to Promote Research
- 9 Advanced Research Centres of excellence
- Prestigious Atal Incubation Centre- supported by NITI Aayog established at RNTU
- High End Courses like Cyber Security, Artificial Intelligence, ML delivered through industry giants like Microsoft and HP
- 8 Registered Patents in 2018
- Exclusive campus Radio Channel - Radio Raman

Rabindranath TAGORE UNIVERSITY
MADHYA PRADESH, BHOPAL AN AISECT GROUP UNIVERSITY
Approved by : AICTE, NCTE, BCI, INC, MP PARAMEDICAL COUNCIL, DEB (UGC) | Recognized by : UGC | Member of : AIU, ACU

CVRU DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY
Chhattisgarh | Madhya Pradesh | Bihar AN AISECT GROUP UNIVERSITY

AISECT UNIVERSITY
JHARKHAND, HAZARIBAG AN AISECT GROUP UNIVERSITY
Recognized by : UGC

RNTU is in the Rank Band 151-200 in University Category in nirf 2019

AISECT Group of Universities Headquarters : RNTU Campus, Bhopal-Chiklod Road, Near Bangrasia Chouraha, Bhopal, MP, India, Ph. : 0755-2700400, 2700413, E-mail : aisect@aisect.org, Web : www.aisect.org

For more information, call : RNTU, Bhopal - 09993006401, CVRU, Bilaspur- 06261900581, CVRU, Vaishali - 09993233374, AU, Jharkhand - 08252299990, CVRU, Khandwa - 09907337693

प्रेषक : मुकेश वर्मा, प्रधान संपादक
'समावर्तन' हिन्दी मासिक
माधवी, 129, दशहरा मैदान, उज्जैन-456010

पुस्त–प्रेष्य

स्वामी, प्रकाशक और मुद्रक अजय भट्टाचार्य द्वारा आकृति ऑफसेट, 5 नईपेठ, उज्जैन से मुद्रित एवं माधवी 129, दशहरा मैदान, उज्जैन से प्रकाशित। सम्पादक : श्रीराम दवे।

चौदह वर्षों से अनवरत प्रकाशित 157 वाँ अंक

ISSN - 2348-8638

समावर्तन®
मासिक पत्रिका

वर्ष 14 ■ अंक 1 ■ पूर्णांक 157 ■ अप्रैल–2021 ■ ₹150/–

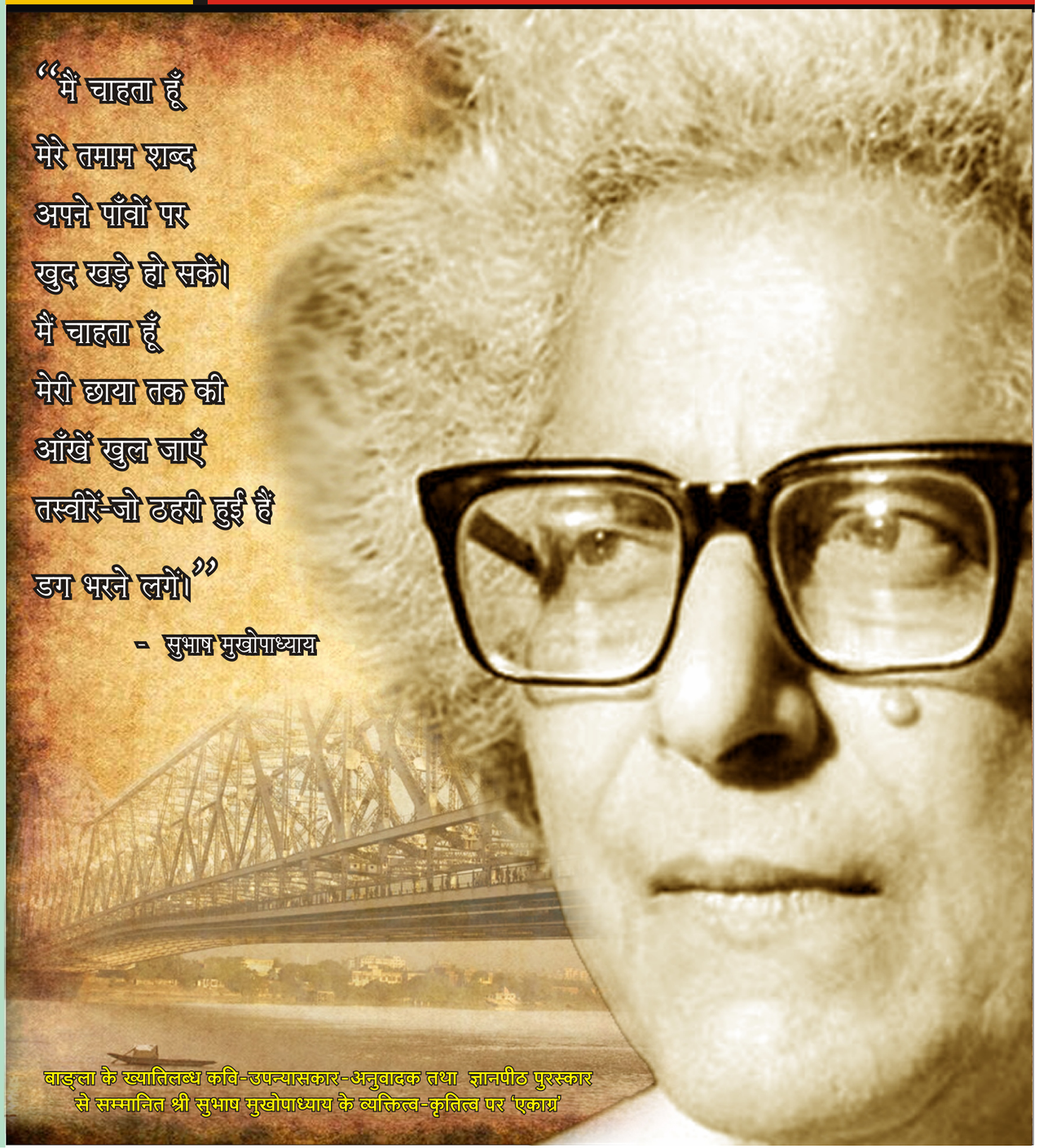

बाङ्ला के ख्यातिलब्ध कवि-उपन्यासकार-अनुवादक तथा ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित श्री सुभाष मुखोपाध्याय के व्यक्तित्व-कृतित्व पर 'एकाग्र'

वर्ष 14 ■ अंक 1 ■ पूर्णांक 157 ■ अप्रैल 2021 ■ रू. 150/-

ISSN - 2348-8638

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नयीदिल्ली द्वारा मान्यता प्राप्त
दुष्यंत कुमार स्मारक पाण्डुलिपि संग्रहालय भोपाल द्वारा कमलेश्वर पुरस्कार वर्ष -2010
महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी द्वारा मान्यता प्राप्त

समावर्तन®

मासिक पत्रिका

सम्पादक मण्डल

संस्थापक : सम्पादन समन्वयक
प्रभातकुमार भट्टाचार्य, उज्जैन

अध्यक्ष : सम्पादक मण्डल
रमेश दवे, भोपाल
मो. 94065 23071

निदेशक संपादन
सूर्यकान्त नागर, इन्दौर
मो. 98938 10050

निदेशक प्रबन्धन
रमेश सोनी, इन्दौर
मो. 99264 97611

प्रधान सम्पादक
मुकेश वर्मा, भोपाल
मो. 94250 14166

मुख्य सम्पादक
निरंजन श्रोत्रिय, गुना
मो. 98270 07736

सम्पादक
श्रीराम दवे, उज्जैन
मो. 94259 15010

कार्यकारी सम्पादक
हरीशकुमार सिंह, उज्जैन
मो. 94254 81195

प्रबन्ध सम्पादक
सदाशिव कौतुक, इन्दौर
मो. 98930 34149

कला सम्पादक
अक्षय आमेरिया, उज्जैन
फो. 0734 2561120

जनसम्पर्क अधिकारी
प्रकाश बांठिया, उज्जैन
मो.98260 69558

सह सम्पादक
राजीव शुक्ला (संस्कृति), इन्दौर
निवेदिता वर्मा (सरोकार), उज्जैन
राधेश्याम मिश्र (प्रबन्ध), उज्जैन

सहायक सम्पादक
वाणी दवे शर्मा, हरदीप दायले, उज्जैन

कार्यालय सहायक
संजय मालवीय,उज्जैन

सम्पादक मण्डल के सभी पद अवैतनिक है।

सम्पादकीय : प्रकाशकीय कार्यालय
''अक्षय-माधवी'', 129, दशहरा मैदान,
उज्जैन (म.प्र.) 456010
फोन : 0734 2524457
(समय प्रातः 08 से 11.30 बजे तक)
ईमेल : samavartan@yahoo.com
वेबसाइट : www.samavartan.com

सह संस्थापक : सम्पादन परामर्शी
अभिलाष भट्टाचार्य, मुम्बई

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक
डॉ. अजय भट्टाचार्य, सूरत

मुख्य संरक्षक
संतोष चौबे, भोपाल

संरक्षकद्वय
ओम अमरनाथ, उज्जैन
राजू पटेल, मुम्बई

परामर्श मण्डल
रश्मि वाजपेयी (दिल्ली), विश्वनाथ सचदेव (मुम्बई), सादिक (दिल्ली), मंजु तिवारी (भोपाल), उर्मिला शिरीष (भोपाल), महेन्द्र गगन (भोपाल), सत्यमोहन वर्मा (दमोह)

समावर्तन का मूल्य
सदस्यता प्रति अंक : 150 रु. मासिक वार्षिक - 1500/-
विदेश के लिए प्रति अंक : 10 $ वार्षिक : 100 $

चेक पर केवल 'समावर्तन' लिखें तथा चेक अथवा मनिआर्डर निम्नलिखित पते पर भेजें
डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य
'अक्षय-माधवी', 129, दशहरा मैदान, उज्जैन (म.प्र.) 456010

वार्षिक सदस्यता हेतु डिजिटल भुगतान
बैंक का नाम - आयडीबीआई
ब्रांच का नाम - फ्रीगंज, उज्जैन
खाता क्रमांक - 0088102000031620
खातेदार का नाम - समावर्तन
आयएफएससी नं. - आय.बी.के.एल 0000088

समावर्तन का संचालक मण्डल
प्रनति भट्टाचार्य - अध्यक्ष, उज्जैन
कृष्णा बैनर्जी - संचालक, मुम्बई
तुहिन भट्टाचार्य - प्रबंध संचालक,सूरत

विशेष सम्पादक- नाट्यराग
भारतरत्न भार्गव - नयीदिल्ली, मो.98116 21626

विशेष परामर्शी - घरोंदे
प्रतापसिंह सोढ़ी, इन्दौर, मो.89302 35285

विशेष परामर्शी -लोकराग
शिव चौरसिया, उज्जैन, मो. 97700 78000

निदेशक - समावर्तन संकुल (प्रतिनिधि मण्डल)
प्रकाश रघुवंशी, उज्जैन, मो. 94250 91114

विशेष सम्पादक- साहित्य विचार
शैलेन्द्रकुमार शर्मा, उज्जैन मो. 98260 47765

दिल्ली ब्यूरो चीफ
परवेज़ अहमद
219, समाचार अपार्टमेन्ट मयूर विहार फेज़-1
दिल्ली-110054, मो. 098111 -54371

मुद्रणालय : आकृति ऑफसेट, 5 नईपेठ, उज्जैन (म.प्र.)
© सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक एवं प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है।
प्रकाशित रचनाओं के विचार से 'समावर्तन' का सहमत होना आवश्यक नहीं।
समस्त विवाद उज्जैन न्यायालय के अन्तर्गत विचारणीय।

समावर्तन®

अप्रैल -2021

इस अंक में

प्रथम पृष्ठ : ओ मन के पुनीत संकल्प! : मुरलीधर चाँदनीवाला : 05

अभिमुख : समावर्तन : साहित्यिक पत्रिका में क्रांति : रमेश दवे : 06

मेरा नमन : समावर्तन का चौदहवाँ वर्ष : अजय भट्टाचार्य : 07

एकाग्र

परिचय : सुभाष मुखोपाध्याय : 08

मैं काल का राखाल नहीं...: सुभाष मुखोपाध्याय : 09

कविता क्यों लिखता हूँ : सुभाष मुखोपाध्याय :12

सुभाष मुखोपाध्याय की कुछ कविताएँ :14

सुभाष मुखोपाध्याय और अमृत राय चिट्ठियों के आईने में : रामशंकर द्विवेदी : 16

स्मृति शेष सुभाष दा : रणजीत साहा : 20

संधी के क्षण के कवि... : सुनील गंगोपाध्याय : 25

सुभाषीत रवीन्द्र : अशोक वाजपेयी : 26

बातचीत : सुभाष मुखोपाध्याय से रणजीत साहा की बातचीत : 27

बांग्ला के दो वरिष्ठ सर्जकों की दृष्टि में सुभाष दा : रूपांतर डॉ.रामशंकर द्विवेदी : 39

विचारविश्व :मेरा जीवन ही मेरा संदेश (गांधी स्वयं एक विचार) : रमेश दवे : 41

रेखांकित : हेमंत देवलेकर की कविताएँ : चयन - निरंजन श्रोत्रिय : 42

समकाल:कथाकाल : सुषमा मुनीन्द्र की कहानी - परलोक सुधारने के लिये : चयन-मुकेश वर्मा : 47

कविताएँ : मिथिलेश श्रीवास्तव, मुकेश निर्विकार, कुंअर उदयसिंह 'अनुज' : 51

कहानी : पुरस्कार : रूपसिंह चंदेल : 53

कहानी : कहानी अब शुरू होती है : दामोदरदत्त दीक्षित : 56

ललित निबंध : ब्संत प्रकृति की श्रतु है : गरिमा संजय दुबे : 61

बहस : सोश्यल मीडिया और साहित्य : उज्जैन क्षेत्र के सुधीजनों की प्रतिक्रियाएँ :62

साहित्यिक हलचल : 65, अनंतिम : मुकेश वर्मा : 66

अक्षर विन्यास तथा आवरण एवं लेआउट डिजाइनिंग : विवेक शर्मा * मुद्रण संशोधक : गरिमा दवे

ओ मन के पुनीत संकल्प !

यह ऋग्वेद के पाँचवें मंडल का नौवाँ सूक्त है, और उस महान् संकल्प को सम्बोधित है ,जो मनुष्य के मन में सिद्धिदाता के रूप में आता है। यह संकल्प दृढ हो, पुनीत हो, शुभ और शिव हो, तो चमत्कार कर देता है। जीवन की सफलता का सम्पूर्ण श्रेय संकल्प की शक्ति को ही दिया जाता है।

त्वामग्ने हविष्मन्तो देवं मर्तास ईळते।
मन्ये त्वा जातवेदसं स हव्या वक्ष्यानुषक्।।

ऋग्वेदरू 5.9.1

ओ मन के पुनीत संकल्प!
हम तुम्हें ही ढूँढ रहे हैं।
तुम ही ध्यान में आते हो बार-बार,
तुम ही जन्मदाता हो उन सबके
जिनकी हमने अभिलाषा की।
तुम ही तो हो
जो ले चलते हो हमें लक्ष्य की ओर।।1।।

तुम ही पुरोहित हो मनुष्य के,
हे संकल्प ! तुम ही आसन बिछाते हो,
और रहने की जगह देते हो।
इस जीवन के यज्ञ में तुम ही हो
जो ले आयेगा समृद्धियाँ,
तुम ही हो जो चरितार्थ करेगा हमें।।2।।

हे पुनीत संकल्प!
दो अरणियों की संघर्ष-कथा हो तुम।
नवजात शिशु की भाँति आये
और मूर्धाभिषिक्त हुए।
तुम्हार बल अमित, तुम्हारा नेतृत्व भी महान।।3।।

हे दिव्य संकल्प!
बहुत कठिनाई से खोजे गये हो।
तुम निगल जाते हो
मनुष्य की पशु-लिप्साओं को
और एक बीज बोते हो उत्कर्ष का।।4।।

हे आग्नेय संकल्प !
चिन्गारियाँ आपस में मिलती हैं,
एक दिव्य आलोक रच जाता
और घड़ने लगती वे सब चीजें
जैसे लोहार घड़ता है अस्त्र।
तुम ही धार बनाते हो, तुम ही
अजेय बनाकर भेज देते संग्राम में।।5।।

हे जीवित संकल्प!
तुम्हारा विस्तार अनंत है,
प्रेम सब सीमाओं से परे।
हम घिरे हुए अन्तर्विरोधों से, अनर्थ से,
तुम सब अवरोधों से पार ले चलो।।6।।

हे विराट संकल्प! हे महाबली!
मनुष्य की आत्माओं को
आनंद के आलोक में ले चलो।
तुम हमें उज्ज्वल पथ पर आगे बढाओ।
हमारा पोषण करो, संवर्धन करो।
संकल्प का ऐश्वर्य ही विजयी होगा,
तुम यहीं मन में निवास करो।
संग्राम में तुम आगे-आगे चलो,
जिससे हम जयी हों।।7।।

डॉ.मुरलीधर चाँदनीवाला
मधुपर्क, 7, प्रियदर्शिनीनगर, रतलाम (म.प्र.)
मो.9424869460

समावर्तन : साहित्यिक पत्रिका में क्रान्ति

रमेश दवे

साहित्य तो स्वयं ही एक क्रान्तिकारी उद्घोष होता है। वह नए विचार, नए आचरण, नए लेखक और नए पाठक का निर्माता भी होता है। समाज को संस्कारित करने और वैचारिक क्रांति में साहित्य की बड़ी भूमिका रही है। क्या भारतेन्दु, महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि लेखकों ने अपने समय, अपनी भाषा और अपने सृजन को क्रान्ति-मूलक नहीं बनाया था? क्या हमारे सामाजिक, राजनैतिक वैचारिक और अनुभवात्मक चिन्तन-अध्ययन में साहित्य ने सार्थक हस्तक्षेप नहीं किया? उदंत मार्तण्ड व बंगाल गजेट से लेकर भारतीय पत्रिका-जगत में जिन पत्रिकाओं ने नई दिशा रची उनमें से क्या ब्लिट्ज, करंट, धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान जैसे आंशिक-साहित्यिक स्वरूप को भुलाया जा सकता है? साहित्य संदेश, सरस्वती ने कितने नए लेखकों को इतिहास बना दिया। आज भी ज्ञानोदय से नया ज्ञानोदय, वागर्थ, हंस, पहल आदि ऐसी पत्रिकाएँ हैं जिनसे युवा हो या वरिष्ठ, सभी उम्र के रचनाकार नए नए कलेवर में प्रकट हो रहे हैं। इसलिए साहित्य की पत्रिका के अवदान को अखबारों की तरह तत्काल में जन्म और तत्काल में ही मृत्यु की तरह न देखा जाकर, स्मृति-निर्माता, इतिहास-रचेता और परम्परा की निरंतरता में देखा जाना चाहिए।

समावर्तन का युवा-सम्पन्न चौदहवाँ जन्म वर्ष

समावर्तन का जन्म तेरह वर्ष पूर्व डॉ. प्रभात भटटाचार्य की प्रज्ञा में हुआ था। उनके संकल्प, समर्पण और सोच का ही परिणाम है समावर्तन। प्रारंभ से ही समावर्तन ने अपने कलेवर, आवरण, वैचारिक और सर्जनात्मक चिन्तन से हिन्दी पाठकों को चौंकाया। समावर्तन ने अपने इतिहास-व्यक्तित्व जैसे भारतेन्दु, बालकृष्ण भटट, बालमुकुन्द गुप्त, गुलाबराय, प्रताप नारायण और महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसे अदम्य साहस के धनी संपादक से विस्मृत प्रतिमाओं का स्मरण-उत्सव मनाया और फिर लगातार अज्ञेय, मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा, प्रभाकर माचवे, नरेश मेहता, भवानीप्रसाद मिश्र, कुँवरनारायण, केदारनाथ सिंह, अशोक वाजपेयी रमेशचन्द्र शाह, राजी सेठ, कृष्णा सोवती, मालती जोशी, राजेश जोशी आदि अनेक तेजस्वी सर्जकों की एक श्रृंखला रची और यह कार्य किसी विचारधारा के पूर्वग्रह से प्रतिबद्ध न होकर किया। समावर्तन ने प्रचलित साहित्यिक-पत्रिकाओं के प्रारूप में नवाचारात्मक दखल देकर यह भी सिद्ध किया कि पत्रिका केवल आत्म-प्रकाशन का माध्यम न होकर वैचारिक क्रांति का भी उत्कृष्ट माध्यम होती है। वह सृजन के प्रति उकसाती है, विचार में उद्वेलन पैदा करती है और पीढ़ी-दर-पीढ़ी नए सर्जकों का निर्माण और प्रोत्साहन भी करती है।

समावर्तन ने अपने युग-सम्पन्न के पश्चात चौदहवें वर्ष में प्रवेश के साथ यह भी सोचा है कि अपने किशोर-काल या टीन-ऐज में वह ऐसा कुछ करे कि अपने वर्तमान को भविष्य की संभावना बना सके। समावर्तन के समस्त सम्पादकों, कार्यकारियों और सहयोगियों से शक्तिगृहण कर पत्रिका अपनी जीविका का संघर्ष करने के बावजूद भी यदि जारी है तो यह पत्रिका में निहित संकल्प की विजय ही कही जा सकती है।

आइए, इस चौदहवें वर्ष में प्रविष्ट पत्रिका को हर लेखक अपनी श्वास अपनी ऊर्जा, अपना सहयोगी-अपनत्व देकर एक अनुष्ठान की प्रतिष्ठा का संरक्षण करे। समावर्तन अपने तेरह वर्ष के जीवन के साथ समस्त लेखकों, सहयोगियों और प्रकाशन सम्पादन, वितरण, मुद्रण, टाइप सेटिंग, कला-संयोजन से जुड़े साथियों, विचारकों, पाठकों सबको अपनी शतशः शुभकामनाओं का बासंती उपहार देकर आश्वस्त है कि जब तक आप सबका स्नेह है, संरक्षण है, समावर्तन की श्वास भी जारी रहेगी। स

(अध्यक्ष, सम्पादक-मण्डल)
मो.0755-2777048

समावर्तन का चौदहवाँ वर्ष

डॉ.अजय भट्टाचार्य
स्वामी-प्रकाशक-मुद्रक 'समावर्तन'

'समावर्तन' का 14वाँ (चौदहवाँ) वर्ष इस अंक से शुरू हो हो रहा है। अरे, देखते देखते मेरे बाल भी श्वेत-श्याम होने लगे हैं और मैं सठिया चुका हूँ। समय कभी ठहरता नहीं है। ठहराव यों भी हमें स्वीकार नहीं। 'समावर्तन' भी ठहरा नहीं, रुका नहीं, अनवरत चल रहा है - बेरोकटोक, अटूट, अबाध, निरन्तर। समावर्तन के लेखकों, पाठकों और अनोखे सम्पादक मंडल को हमारा सलाम। इस पत्रिका की धरोहरधर्मिता का संकल्प विभिन्न रूपों में प्रकट हो रहा है।

स्वप्नदृष्टा समावर्तन अनेक सपनों को कागज पर उतार चुका है, याद कीजिये समावर्तन के 150वें अंक की जो केवल इसीलिये विशिष्ट नहीं है कि वो 150वाँ अंक है। दरअसल, समावर्तन को बहुभाषी पत्रिका बनाने के हमारे सपने को चरितार्थ करने की दिशा में एक छलाँग है। सामग्री संचयन में निरंतर जुटे **हमारे वरेण्य संपादक श्रीराम दवे ने हमें चौंका दिया।** भारत के दक्षिणतम प्रदेश केरल की मलयालम भाषा के दो वरिष्ठ लेखकों को उनके पूरे वैभव के साथ प्रस्तुत किया गया।

वरिष्ठतम मलयाली कवि **श्री अक्कितम अच्युतम नम्बुदरी** को 'एकाग्र' के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया। अद्भुत संयोग यह था कि जिस दिन केरल में समावर्तन के 150वें अंक का लोकार्पण आयोजित हुआ, उसी आयोजन से जुड़ गया **श्री अक्कितम को चुनाव गया ज्ञानपीठ सम्मान के लिये।** इसी अंक में दूसरे लेखक है मलयालम के हिन्दू अनुवादक **डॉ.आरसु (आर.सुरेन्द्रन)** वे वरिष्ठ मलयाली लेखक के रूप में भी प्रतिष्ठित हैं।

बहुभाषी पत्रिका बनाने के समावर्तन के सपने की दक्षिण से पूर्व में यात्रा की गई। प्रख्यात वरिष्ठ लेखक उरई वाले **डॉ.रामशंकर द्विवेदीजी, साहित्य अकादमी से अनुवादक के रूप में सम्मानित हैं,** उन्होंने **बांग्ला के वरिष्ठतम कवि ज्ञानपीठ सम्मान प्राप्त श्री सुभाष मुखोपाध्याय जी** को समावर्तन में प्रस्तुत किया तथा इस कार्य में उनका सहयोग किया **डॉ.रणजीत साहा (नईदिल्ली)** ने। हम इन दोनों महानुभावों के प्रति कृतज्ञ हैं। प्रस्तुत है अप्रैल अंक। स

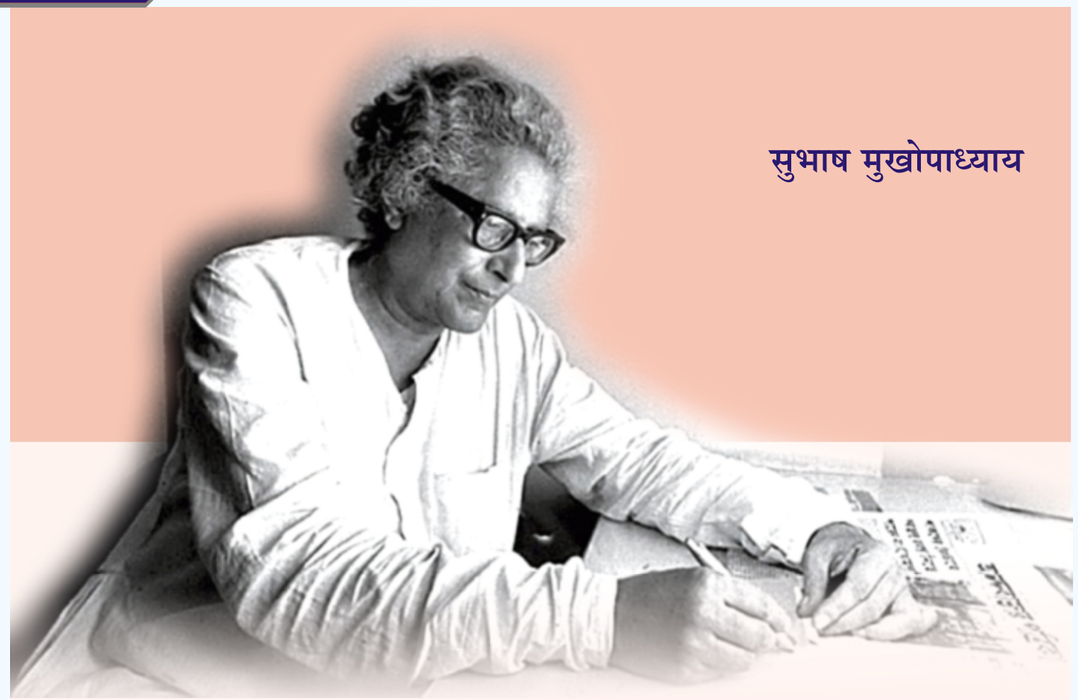

जन्म : 12 फरवरी 1919

किशोरावस्था से ही श्रमिक आन्दोलन में सक्रिय। मार्क्सवादी क्रान्ति की तरफदारी में गीत, कविता, गद्य-लेखन करने लगे। 1941 में कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य बन गये। पार्टी के मुखपत्र के लिये तरह-तरह की सामग्री लिखते रहे। आन्दोलन में भी शरीक हुए। जेल गये। 1950 में जेल से रिहा होने के बाद पटसन मजदूरों के लिए एक पत्रिका निकाली। 1982 में दलगत राजनीति छोड़कर 'आनंद बाजार पत्रिका' से जुड़े गये।

कृतियाँ : बांग्ला कविता : बाघ डेकेछिलोः छेले गेछे बने (1972) : चिरकुट (1950), चोई-चोई, चोइ-चोइ : ऐ भाई (1971), एकटु पा चालिए भाई (1979), जल सईते (1981), जा रे कागजेर नौको (1989), जत दूरेई जाई (1965), काल मधुमास (1969) नारदेर डायरी, पदातिक (1940) सुभाष मुखोपाध्यायेर काव्य-संग्रह (भाग-एक), सुभाष मुखोपाध्यायेर काव्य-संग्रह (भाग-2) (1974) ; सुभाष मुखोपाध्यायेर श्रेष्ठ कविता (1970), सुभाष मुखोपाध्यायेर कविता, सुभाष मुखोपाध्यायेर श्रेष्ठ कविता (परिवर्तित), धर्मेर कल (1991)।

उपन्यास : अन्तरीप बा ह्यासेनेर असुख (1983), हुंगरुज़ (1973), इयासिनेर कोलकाता (1978), के कोथाय जाई।

यात्रावृत्त : आबार डाक बांग्लार डाके (1981), डाक बांग्लार डाके (1958), जेते-जेते देखा, वियतनामे किछू दिन (1974)।

बालोपयोगी साहित्य : अक्षरे-अक्षरे (1954), बांगालीर इतिहास (1960), देश-विदेशेर रूपकथा (1967), कथार कथा, मियूर जन्ये छड़ानो छिटोनो (1980), निजे लिखी निजे पड़ी ; से दिन जंगले-जंगले (1983)।

अनुवाद : अमरू-शतक (1988), अना फ्रेंकेर डायरी, ने गुइवारर डायरी, हाफ़िजेर कविता, कत क्षुधा (1953), नाजिम हिकमतेर कविता (1979), नाज़िम हिकमतेर आरो कविता, पाब्लो नेरूदार आरो कविता (1970), पाब्लो नेरूदार कविता-गुच्छ (1973), राग ईगल, रोजेनबर्गेर पत्र-गुच्छ (1954), रस गल्प संचयन (1963)।

विविध रचनाएँ : आमार बांग्ला (1961), भूतेर बेगार (1973), चर्यापद, ढोल गोविन्देर आत्मदर्शन (1987)।

पुरस्कार-सम्मान : 'जत दूरे जाई' (कविता संग्रह) पर साहित्य अकादेमी पुरस्कार (1964), अफ्रोएशियाई लोटस पुरस्कार, कुमारन आशान पुरस्कार, आनंद पुरस्कार और कबीर सम्मान। 1971-85 के दौरान भारतीय साहित्य के संवर्धन में योगदान हेतु सत्ताईसवाँ ज्ञानपीठ पुरस्कार (1991), पद्मभूषण (2003)

निधन : 8 जुलाई, 2003।

'सत्ताईसवाँ ज्ञानपीठ सम्मान प्राप्त करने के बाद स्व.सुभाष मुखोपाध्याय द्वारा दिया गया वक्तव्य'

मैं काल का राखाल नहीं...

सुभाष मुखोपाध्याय

'स्वागतम्'- जैसा शब्द बड़ा औपचारिक है। हम सब कहते आये हैं- 'अच्छा, आने की आज्ञा दीजिए।' आप लोगों ने इतना कष्ट उठाकर, इस शहर को अपने पाँवों की धूल दी और मेरे हाथों में पुरस्कार सौंपते हुए बांग्ला भाषा को सम्मानित किया, उसके प्रति मैं सबकी ओर से अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। पुश्तैनी गाँव-घर होता तो मैं आप सबको बैठने के लिए पीढ़ा और पाँव धोने के लिए जल देता। लेकिन देश के बँटवारे के बाद घर कहने को हमारे पास कुछ नहीं। अगर कोलकाता ने अपनी गोद में नहीं उठा लिया होता तो न जाने मैं कहाँ होता!

फूल के काँटों से मुझे डर लगता है लेकिन मछली के काँटों के लिए मैं साक्षात यम हूँ। घर के बाल-बच्चों के गले में काँटा फँस जाने पर बिल्ली-बुद्धि के नाते लोग मेरे पाँव पड़ते हैं। यह जानकर कि 'बिल्ली के भाग्य से छींका टूटा' वाली कहावत कहाँ तक उपयुक्त है, वह मुझे देखते ही आप सब अच्छी तरह समझ जाएँगे।

बाल वय में मेरी बुद्धि इतनी तेज़ नहीं थी। मेरे शिक्षक बताया करते थे कि इस बालक के भाग्य में बहुत दुःख लिखा है।

इसके बाद एक घटना घटी। चूनापुकुर लेन के स्पोर्ट्स में ऊँची कूद और लम्बी कूद में अव्वल आने के बाद थी धीमी साइकिल रेस। रेस शुरू होते ही मैंने पाया कि मैं फिर सबसे आगे हूँ। मैंने यह सोच लिया कि मेरे जीतने की कोई गुंजाइश नहीं। तभी मेरे कानों में लोगों की आवाज़ सुनी... ''बक अप...बक अप...!'' मैंने पीछे मुड़कर देखा तो पाया एक-के-बाद-एक सभी प्रतिभागी सन्तुलन न रख पाने के कारण गिरते चले जा रहे हैं। तब मैं धीरे-धीरे पैडल चलाता उस धीमी रेस में भी प्रथम हो गया। पदकों के कम पड़ जाने के कारण अव्वल खिलाड़ी के खिताब के साथ मुझे मिली थी- गेंदे की माला।

मैं घर लौटा और आईने के सामने खड़े होकर मुझे ऐसा लगा कि मेरा भाग्य अब उतना बुरा नहीं।

मेरे तीन-तीन पुरखों में किसी को बहत्तर अंक नसीब नहीं हुए। मैंने हँसते-खेलते तिहत्तर अंक पाये हैं। इसे मानने-जानने के बाद कि सब्र का फल जरूर मिलता है- छींका टूटने वाली बात अब भी रह जाती है। मैं दूसरी भारतीय भाषाओं के बारे में नहीं जानता लेकिन बांग्ला की स्वयंवर सभा में तो राजपुत्रों की ही पुकार होती रही है। एक कहता है, मुझे देखो तो दूसरा कहता है, मुझे। कोई किसी से कमतर नहीं। अब राजकन्या को तो आगे बढ़ना ही होता है - आँखें मूँदकर ही नहीं, भाग्य की दुहाई भी देते हुए। ऐसा न होता तो न जाने कितनों की अनदेखी कर वह कभी किसी एक के गले में वरमाला डाल पाती?

भाग्य मनुष्य को आकाश तक उठा ले जाता है। वायुयान के यात्री की तरह उसे नीचे भी उतर आना पड़ता है। उत्थान और पतन के बीच क्या होगा...क्या होगा...का भाव मन में आता-जाता रहता है। ठीक-ठाक नीचे उतर आऊँगा या टूट-बिखर जाने पर ऊपर ही जल-भुन मरूँगा- यह बात ऊँची आवाज़ में कोई कह नहीं पाता। हालाँकि दुर्भाग्य हर पल छाया की तरह मनुष्य के भाग्य का पीछा करता रहता है।

सौभाग्य से लाभ-शुभ बढ़ा होता है लेकिन 'वीरभोग्या वसुन्धरा' में पूरी मजबूती से ज़मीन में पाँव जमाकर जो पौरुष गन्तव्य तक पहुँचा दे- वह अत्यन्त गौरवपूर्ण होता है।

अब मैं अपनी बात पर आता हूँ।

भारतीय उपमहाद्वीप में हम सब अग्निकोण स्थित लोग हैं। आर्यसभ्यता के मानचित्र में हम सब रहे- अन्तेवासी। आर्य भाषाभाषी इस क्षेत्र में आकर यहाँ के अधिवासियों के साथ काया वाचा मनसा घुलमिल गये। हमारे आकार-प्रकार और हमारी भाषा में, आचार और आचरण में उसकी छाप-छाया आज भी स्पष्ट है। हम पुरुष लोगों के असुन्दर होने के बावजूद हमारी लड़कियों में एक विशिष्ट लावण्य होता है। हम लोग कुछ ज्यादा ही भावप्रवण होते हैं- घड़ी-भर में उत्तेजित हो जाते हैं और फिर पलक झपकते शान्त हो बैठते हैं। एक ठौर पड़े रहने के कारण ही शायद हमारे चित्रों में, अल्पना और हस्तशिल्प में, उस पूर्वापर जनजीवन के समन्वय की धारा आज भी प्रवाहित होती दिखती है। बांग्ला की जनश्रुतियों में जिन डोम-चाण्डालों ने उन्हें अपने प्राणों से सींचकर जीवित रखा है, वे भी हमारे लिए प्रणम्य हैं।

आज से हजार साल पहले इस क्षेत्र के लोग किस भाषा में बात करते थे- उसे जाने पाने का कोई उपाय नहीं। हाँ, बचते-बचाते कुछ शब्दों में उसके रेशे भर बचे हुए हैं। आर्य भाषा के प्रभाव को अपनी मुँह-जुबानी उलटकर और अपने साँचे में ढालकर उसे हमने अपनी बांग्ला बना लिया है। जात-पाँत की चिन्ता किए बगैर हमने उपयोगी शब्दों को जोड़-जाड़कर बांग्ला भाषा की भूख-प्यास मिटाई है।

साहित्य में कृत्रिमता की भूमिका समाप्त कर, बांग्ला ने हमारे मुँह की जुबान को ही साहित्य के राज्य में प्रवेश दिलाया। संस्कृत से पीड़ित बांग्ला को बचाने के लिए ही, स्वयं पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आगे बढ़आये थे। हालाँकि रवीन्द्रनाथ के निर्देश की अनसुनी कर हमने आज भी बांग्ला की गर्दन पर अंग्रेजी का जुआ लाद रखा है।

मुझे मालूम है कि कोई अपना जीवन देकर भी सारी चीज़ों का हिसाब-किताब नहीं रख सकता। आज जो है, वह कल नहीं था। इसी प्रकार आज जो है, वह कल नहीं होगा। मैं इतिहास में बनते-बिगड़ने और उसकी उठा-पटक का लेखा-जोखा ठीक करने यहाँ नहीं आया। और आज के दिन अपनी निराशा और दुःख भरे दिनों को खुरचने से भला क्या मिलेगा? इससे तो अच्छा है मैं अपने जीवन की कहानी कहूँ।

मैं साहित्य की दुनिया में कैसे आया, पहले यह बता दूँ! बचपन से ही, घर के दूसरे सदस्यों की तरह मैं भी गाना बहुत अच्छा गाता था। बारह साल की उम्र में मुझे टाइफाइड हो गया लेकिन मनुष्य और यमराज की खींचतान में मैं बच गया। लेकिन मेरे गले की आवाज़, स्मरण शक्ति और मेरी दृष्टि-इन तीनों पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

तब-जब सारी दुनिया पर आर्थिक मन्दी की छाया थी, मेरे पिताजी को सरकारी नौकरी से मिलने वाली तनख्वाह में कटौती होने लगी। और जब मँझले काका जूट दफ्तर की नौकरी से हाथ धो बैठे तो हम सब शहर के दक्षिणी हिस्से में डेढ़कमरे वाले किराये के एक मकान में आ गये।

प्रकृति की गोद छोड़कर जब मैं कोलकाता आया तो एक बेहद उदास और निराश बालक था। वहाँ की सड़कों ने उसे सँकरे घर से बाहर निकालकर और आँखों से आँसू पोंछकर, उन आँखों में मायावती काजल पहना दिया था।

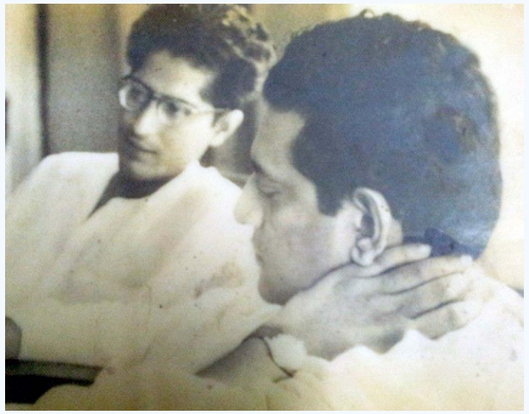

श्री सत्यजीत राय के साथ सुभाष मुखोपाध्याय।

गाँधी महाराज के आह्वान पर तब विलायती कपड़े धू...धू...जल रहे थे, शराब की दुकानों पर पिकेटिंग जारी थी, लाल पगड़ी वाले सिपाही लोगों को बेधड़क पीट रहे थे। सारे अखबार बन्द। जो लोग उसे इतने दिनों तक 'बाड़ाल' (पूर्व बंगाल के अधिवासी) कहकर नाक-भौं सिकोड़ते थे, बस्ती का गजर होने के नाते अब उसे बड़े आदर-जतन के पास बिठाकर शहर का हालचाल पूछते। इसके बाद आए आग-भरे दिन। गोली खाकर फाँसी पर चढ़कर और अनशन पर बैठे शहीद अपने प्राण निछावर कर रहे थे। और दूसरी तरफ थे, हाथ में चाबुक फटकारते, घुड़सवार पुलिस के दस्ते द्वारा खदेड़े जाने पर भी कभी सूने नहीं पड़ने वाले रास्ते।

छुट्टी के दिनों में, गाँव आने पर मैं 'लक्खीर पाँचाली' और 'सत्यपीर पाँचाली' (वाचिक परम्परा में जीवित धार्मिक लोक गाथाएँ) को सिन्नी के लालच में बड़े भक्तिभाव से सुना करता था। रामशाही के नवगाँव में हम हिन्दू-मुसलमान एक ठाँव ही रहते थे। ईद हो, दशहरा हो, हम बच्चों को सभी का भरपूर प्यार मिला करता था। मीलादे शरीफ के दौरान लाल-नीले कागज काटकर हम स्कूल सजाया करते थे।

जब हम लाल बाज़ार के आबकारी बैरक में रहते थे तो मैं अकसर भैया के साथ गिरजाघर की प्रार्थनाओं में सम्मिलित होता। माँ और पिताजी के साथ बेलुड़ मठ भी जाया करता। मोहल्ले में हमारे संगी-साथी, जिनके साथ हम खेला करते थे, उनमें बंगाली, ईसाई और एंग्लो-इण्डियन सभी थे। वह पूरा-का-पूरा मोहल्ला पारसी, सिन्धी, यहूदी और आर्मेनिक लोगों से भरा-पूरा था। पास ही एक चीनी बस्ती थी और अधर बैरकों में ढेरों गैर-बंगाली सिपाही रहा करते थे। उनके साथ देह पर मिट्टी रगड़कर हम कुश्ती के भी दाँव-पेंच सीखा करते। मैंने कई लोगों को आपस में कई-कई भाषाओं में बातें करते सुना है। मेरी माँ बेधड़क हिन्दी और ओड़िया में बातें कर लेती थीं। इसका एक कारण यह था कि हमारी मातृभाषाओं ने हमारे मन को कभी छोटा नहीं होने दिया।

वैसे मैं तो कुछ और ही बनना चाहता था। छोटा था, तभी से संन्यासी बनने की चाह मन में संजोए बैठा था। फिर सोचता, पलटन में भरती हो जाऊँगा। यह सुनकर माँ ने पूछा था, ''अरे फिंर मेरा क्या होगा?'' मैंने उन्हें भरोसा दिया था, ''क्यों, मैं तुम्हें बहँगी में बिठाकर साथ ले जाऊँगा।'' कुछ दिनों बाद, बड़ा होने पर मेरी यह उच्चाशा रास्ते से भटक गई और खेल के मैदान से जा टकरायी।

मैंने किसी आन्तरिक प्रेरणा से पढ़ना-लिखना शुरू नहीं किया। अपने एक सहपाठी के बड़े भाई को मैं बड़ी ईर्ष्या से देखा करता था। उन लोगों की एक हस्तलिखित पत्रिका थी- जिसमें कुछ लिखने के लिए उन्होंने मुझे लेखनी के संसार में धकेल दिया था। लोग बाग जिस तरह बोलते-बतियाते हैं, ठीक वैसा ही कुछ लिखते हुए मैंने एक रचना तैयार की। उन्होंने भी दल-बल के साथ मेरी पीठ थपथपाते हुए कहा, ''तुम गद्य में कहीं बेहतर लिख लेते हो।'' उसी उत्साह में मैंने एक और रचना लिख डाली। एक दिन जब सारा स्कूल सुनसान पड़ा था, मैं दबे पाँव अपनी दोनों रचनाएँ पत्रिका के बक्से में डाल आया। इसके बाद मैंने पाया कि मेरी गर्दन पर सवार लिखने वाला भूत कहीं गायब हो गया है।

उस समय मेरी उम्र यही कोई चौदह साल की थी। स्कूल में गर्मी की छुट्टी होने वाली थी। वहाँ नगेनबाबू पढ़ाते तो संस्कृत थे लेकिन आधुनिक रंग में रंगे थे। हमने देखा उनकी मेज़ पर तभी स्कूल का चपरासी बिल्कुल ताजा छपी पत्रिका का एक बण्डल रख गया। वे उससे एक प्रति निकालकर पन्ने पलटने और फिर पढ़ने लगे और इधर हम उसी की आड़ में मन ही मन अपनी कहानी गढ़ने लगे। अचानक ऐसा लगा कि शिक्षक महोदय ने मेरा नाम पुकारा। मैं उठ खड़ा हुआ। ''क्या तुमने खुद लिखा है?'' उन्होंने पूछा। मैं तब तक नहीं जानता था कि पत्रिका में मेरी रचना छपी है। मैंने उस बारे में अन्दाज-भर लगाते हुए कहा, ''जी सर!'' तुमने गेटे पढ़ा है?'' उन्होंने फिर पूछा। पढ़ना-वढ़ना तो दूर मैंने तब तक किसी गेटे का नाम नहीं सुना था। उन्होंने बताया कि मेरी रचना पर गेटे की छाप है। मैं उनकी बातों का सिर-पैर कुछ नहीं समझ पाया।

कक्षा जब समाप्त हुई तो मैंने देखा कि स्कूल के गेट पर मुझसे ऊँची कक्षा के छात्र मेरी तलाश में खड़े थे। मैं आगे बढ़ा ही था कि उन्होंने एक झटके में मुझे अपने कन्धों पर उठा लिया और यह कहते हुए चल पड़े कि ''लक्ष्मीबाबू बैठे हैं। मुझे बुला रहे हैं।'' लक्ष्मीबाबू यानी हमारे स्कूल के असिस्टेण्ट हेडमास्टर। हम सब उनसे उतना ही डरते थे जितना कि यमराज से। मैं उनके पास पहुँचा तो देखा, वे सेकेण्ड क्लास के छात्रों को मेरी रचना पढ़कर सुना रहे थे। पूरा पढ़लेने के बाद वहाँ भी मेरे साथ थोड़ी-बहुत दिल्लगी की गयी।

> "ज्ञानपीठ का यह सम्मान मैं अपने अन्त:करण से अपने पाठकों के साथ बाँटना चाहूंगा। लेकिन इस सम्मान के साथ जो एक बड़ी राशि जुड़ी हुई है, उसे, अपने लेखक जीवन के साठ साल में- जितने पाठक मुझे मिले हैं-' यदि वे सभी मुझसे अपना-अपना हिस्सा मांग बैठें तो मेरे भाग्य में कोई कानी कौड़ी भी बचेगी, इसमें मुझे सन्देह है। इसलिए मेरे पाठक इसे तत्त्व या भाव के रूप में ही स्वीकार करें तो मैं अपनी यात्रा में सही सलामत बचा रहूँगा। लेकिन एक बार इस बात की दुहाई दे दूँ कि तत्व को भी किसी विषय के अर्थ में नहीं लें क्योंकि 'तत्त्व' कहने का एक अर्थ 'उपटोकन' भी होता है।"

स्कूल के बाहर भी काफी कुछ दिनों तक इस बात की चर्चा होती रही।

मेरा साथ छोड़ देने वाला भूत अब घुटने मोड़कर बैठ गया था मैं जो कुछ लिखता, वह गद्य ही होता था- यह देखकर कुछ दिनों बाद, मेरे साथ और आसपास वाले लोग, जो मुझसे अपनी व्यर्थ मनोरथ पूरा करवा लिया करते थे, वे भी तन गये। कहने लगे, तुम लेखक तो बन गये हो। अब तुमको कवि होना पड़ेगा।

उस समय पद्य में कोई रचना किये बिना कवि होना बेहद मुश्किल था। कवि का स्थान किसी लेखक के मुकाबले हाथ भर ऊँचा था। इसके बाद, पता नहीं किस-किस जतन से- सिर से पाँव तक पसीने में नहा, नाकों चने चबा और अँसुअन जल सींच-सींच मैंने अपने लिए एक कवि की पदवी जुटायी- वह एक अलग वृत्तान्त है। मैं उस जोड़-घटाव में नहीं जाऊँगा।

कुल मिलाकर मेरा जीवन गद्य-पद्य के ज्वार-भाटा में तिरता-उतराता रहा है। मैं नहीं जानता, मेरी दौड़ मुझे कहाँ तक ले आयी है। मैं काल का राखाल यानी वक्त का चरवाहा नहीं। बुद्धदेव बसु के शब्दों में, काल का पुतला हूँ। मैं देश-काल के ताने बाने में कूदता-फाँदता-नाचता रहा हूँ।

मंगल काव्य के कवियों में से अधिकांश यही समझते थे। देवी-देवता गण उन पर भी निर्भर थे और इसलिए अपने-अपने महात्म्य के बारे में लिखवा लिया करते थे। मैं नहीं जानता कि इस बात को कौन किस तरह से स्वीकार करेगा कि निर्भर होने का एक मतलब है- विभोर होना। इससे अन्तःप्रकृति और बाह्य प्रकृति का द्वैतभाव समाप्त हो जाता है। किसी भी रचना की यही शर्त है। रचना का अभिप्राय अपनी संवेदना के सहारे निर्द्वन्द्व और स्वच्छन्द लय में आरंभ होता है और परिणाम तक पहुँचता है।

रचना का दान तभी संपूर्ण होता है जब कोई उसे ग्रहण करता है। 'अकेले गायक का एकान्त गान' की तरह नहीं बल्कि स्वयं के अलावा और किसी की चाह, जो अपनी आँखों से देखेगा, कानों से सुनेगा। जब तक ऐसा नहीं होगा तब तक उस रचना या सृष्टि का उद्धार नहीं।

दृष्टा, श्रोता और पाठक- यही तीनों हैं 'कोई और'। इनके बिना कोई भी सृष्टि संपूर्ण नहीं होती, नहीं हो सकती। इसलिए कि रचना में इनकी भी भागीदारी है। इस बात को स्वीकार करते हुए मैं यह अच्छी तरह समझ गया हूँ कि अपनी मुसीबतों में खुद को ही पुकारता हूँ। ज्ञानपीठ का यह सम्मान मैं अपने अन्तःकरण से अपने पाठकों के साथ बाँटना चाहूंगा। लेकिन इस सम्मान के साथ जो एक बड़ी राशि जुड़ी हुई है, उसे, अपने लेखक जीवन के साठ साल में- जितने पाठक मुझे मिले हैं-' यदि वे सभी मुझसे अपना-अपना हिस्सा मांग बैठें तो मेरे भाग्य में कोई कानी कौड़ी भी बचेगी, इसमें मुझे सन्देह है। इसलिए मेरे पाठक इसे तत्त्व या भाव के रूप में ही स्वीकार करें तो मैं अपनी यात्रा में सही सलामत बचा रहूँगा। लेकिन एक बार इस बात की दुहाई दे दूँ कि तत्व को भी किसी विषय के अर्थ में नहीं लें क्योंकि 'तत्त्व' कहने का एक अर्थ 'उपटोकन' भी होता है।

ज्ञानपीठ ने जितनी भाषाओं को पुरस्कृत किया है- उन सभी भाषाओं के लोग हमारे इस हरबोला शहर में मिल जाएँगे। अपना घर-बार खोने पर भी मैंने जहाँ स्थान पाया- वह एक विराट देश है। उसका अतीत और वर्तमान- सब कुछ मेरा है। हम अपनी भाषा में, घर-गिरस्ती में रमे हैं, हिन्दी की घाटवाही नौका में हाट-बाजार जाते हैं, तीर्थों में घूमते-फिरते हैं। मैं इस शहर के आईने में सारे देश का चेहरा देख लेता हूँ। यहाँ के धारदार पत्थरों पर सिर पटक-पटक कर जिन्होंने अपनी वंश परम्परा द्वारा कोलकाता को बड़ा किया है, उनके सिर छुपाने की जगह-पार्क, मैदान और जलाशयों को- रूपयों से ठसे भारी-भरकम बोरों द्वारा हथिआया जा रहा है। इस हरबोला शहर को, आइए, हम सब एक लक्ष्य को सामने रखकर इस अधोगति से बचाने की कोशिश करें।

आरम्भिक काल में कविगण समाज के नायक हुआ करते थे। वे मंत्र पढ़कर बादल बरसा देते थे, भूत-प्रेत झाड़ देते थे। कुछ वैसा ही करतब दोहराते हुए मैं आप लोगों को अपने हाथ की सफाई से एक जादुई खेल दिखाऊँगा। इससे आप लोगों के धैर्य को थोड़ी राहत मिलेगी।

सारा देश आज सर्वसंकट हरण उस नयी शताब्दी की ओर मुँह फाड़े देख रहा है। हम जैसे लोग जो अब तीनपन बिताकर चौथेपन में जी रहे हैं, उनके कलेजे धक...धक...धड़क रहे हैं। अभी उन्हें और भी कई रातें कड़कड़ाती ठण्ड से अच्छी तरह जूझते हुए काटनी हैं। मैं चाहता हूँ कि उस ठण्ड को छूमन्तर द्वारा दूर कर उनके होठों पर मुसकान खिला दूँ -

मैं आपको यहाँ सिर्फ रवीन्द्रनाथ की एक कविता पंक्ति की याद दिला देना चाहूँगा- *'के तुमि पड़िछ बसि आमार कविता खानि कौतूहल-भरे आजि हते शतवर्ष परे'* - 'भला तुम कौन हो, जो मेरी कविता कौतूहलपूर्वक आज से सौ वर्ष बाद भी पढ़रहे हो। अब जरा ध्यान देकर देखिए, सोलहकला संपूर्ण पूनम का चाँद मुख्य द्वार पर मुसकराता खड़ा है - बांग्ला की नयी शताब्दी की अगवानी करता। और थोड़ी-सी देर हे, थोड़ी-सी प्रतीक्षा। इसके बाद ही, *'ओ गो आमार पंचदशी तुमि पौंछिले पूर्णिमा ते'* - 'ओ मेरे चाँद तुम आये पूनम में' - कहकर हम किये वरण कर अपने घर लिवा जाएँगे।

कवियों के जादू में अब लोगों का विश्वास नहीं रहा। आशा है, अब आपको उन पर विश्वास आएगा। भानुमती का यह खेल दिखाकर अब मैं आपसे विदा लेना चाहूँगा -

'सफ़ेद काग़ज़ पर बिखेरी गयी थोड़ी-सी स्याही
विषय और आशय कहने को बचा ही क्या है,
उस बूढ़े के पास।
इसे साथ लेकर ही लगा हुआ है
राज्य राज्य में आना-जाना।
इस जीवन में उस बूढ़े ने/कभी नहीं हाथ फैलाया
जो कुछ अपने आप मिल गया
जैसे-तैसे दाना दुनका/जो कुछ जुटा सका
अश्रुजल से सींच-सींच उसे, खुश हो गया।
अब इस जीवन का कोई डर नहीं उस बूढ़े को
बस आने वाली वेला से लगता है डर
गिर चुके हैं दाँत, पड़ गयी धुँधली नज़र
पहले वाली कठिन दिनचर्या, झेल नहीं पाती अब काया।
स्वर्ग नरक और पाप-पुण्य की
बातें उसे तंग नहीं करतीं।

एक-एक इस जीवन का
उत्सव उसे जान पड़ता है
जो कुछ भी वह देख रहा अब
भानुमती का खेल लगता है।''

आदमी जब बूढ़ा हो जाता है तो कुछ ज्यादा ही बक-बक करता है। अंग्रेजी जानने वाले को यह ठीक ही जान पड़ेगा कि खाली घड़ा ज्यादा शोर मचाता है। मैं उस बांग्ला कहावत के बारे में सोच रहा हूँ - *'ढाकेर वाद्दि थामलेई मिष्टि*- बन्द हो बाजा तो खाने को मिले खाजा।'

अब आप उसी मिठास का आनंद पूरी निश्चिन्तता से प्राप्त करें।

हिन्दी अनुवाद : डॉ.रणजीत साहा

कविता क्यों लिखता हूँ ?

सुभाष मुखोपाध्याय

स्वभाव से कवि होता तो कह सकता कि लिखे बिना रह नहीं सकता, इसीलिए कविता लिखता हूँ। किन्तु, इस जले मुख से यह होगी झूठ और लज्जाहीन बात। एक प्रकार से छोटे मुँह बड़ी बात। फिर, साहित्य में मेरा विद्यारम्भ तो गद्य से ही हुआ है। उसके बाद बहुत-सा पसीना जब माथे से चलकर पैरों तक आ पहुँचा तब पद्य का अभ्यास कर सका हूँ।

पर, यह कहानी बाद में कहूँगा। इसके भी पहले एक बात कहना बहुत ज़रूरी है। कविता के साथ छुई-मुई लता की एक समानता है। छूटे ही मुरझा जाना कविता का भी स्वभाव है। बात से ही कविता तैयार होती है, तो भी बात के हाथ-पैर बाहर निकालना मानो कविता को नाराज़ कर देना है। कविता-संबंधी विवाद में पड़ने पर मैं अपने को हीन महसूस करता हूँ। मेरी बच-बच कर बात कहने की मुद्रा से ही पाठकगण इसका अनुमान लगा सकेंगे।

इस बार वही कहानी।

जिस क्षण जो होना होता है उस क्षण वही होता है, इस कारण उम्र अधिक होने पर भी जीवन में अभिज्ञता की घटनाओं को इच्छानुसार न तो खींचकर बढ़ाया जा सकता है और न ही एक को दूसरे की तुलना में अधिक बड़ा किया जा सकता है। फलस्वरूप बूढ़ा होने पर एक ही बात लौट-फेर कर आ जाती है। पुनरावृत्ति देखकर कोई क्षुब्ध होकर इस कथा को मेंढक की शरारत मानकर घृणा के साथ क्षमा कर देगा।

बचपन में हम जानते थे कि कवि लोग पद्य रचना करते हैं। 'कविता' शब्द लोगों के मुख से तब उतना सुनाई नहीं पड़ता था।

अपनी एक प्यारी भाभी का मन रखने जाकर उसके सामने उकड़ूँ बैठे-बैठे अन्त में निराश होने के बाद मुझे एक बात बचपन में ही मालूम हो गई थी कि मैं स्वभाव से कवि नहीं हूँ। उसके पश्चात चौदह वर्ष की उम्र तक फिर मैं लिखने के रास्ते पर गया ही नहीं। और लिखा भी तो एक बन्धु के दादा की बात टाल न सकने के कारण। लिखने से लोगों का मन पाया जा सकता है, यह जानने पर धीरे-धीरे लेखन में मन रम गया।

तब तक घर में और बाहर मेरी रचनाओं के कुछ भक्त तैयार हो गये थे। वे मुझे शाबाशी देते थे। फिर, कुछ दिन बाद देखा कि प्रशंसा करने में वे आनाकानी करने लगे हैं। कहते-हाँ, तो वह तो हो गया, लेखक तो हो गये, अब बेटा, तुम्हें कवि होना होगा। सुनकर तो मैं आश्चर्य में पड़ गया। कवि होने का मतलब था छन्दानुसार तुक मिला-मिलाकर पद्य लिखना।

किसी को कुछ नहीं बताया। कई दिन तक गुमसुम रहा। गद्य भी नहीं लिख सका। लिखने बैठने पर मानों कोई हाथ में चाबुक लेकर कहता- यह क्या हो रहा है? तुम्हें तो कवि होना है।

उस समय मेरे किराये के घर के पास एक बहुत बड़ा तालाब था, जो चारों ओर से ताड़ के पेड़ों से घिरा हुआ था। ठीक मेरी दीवार से लगा हुआ था धुबया घाट। जोर-जोर से साँस छोड़ते हुए धोबी लोग छीओ-छीओ कहते-कहते एक लय में कपड़े पछीटते रहते थे।

गर्मी की छुट्टियों में मैं दोपहर जागकर पसीने से तर-बतर होकर पद्य की आराधना में जुटा रहता था। अकस्मात् एक दिन मेरी कलम पर पद्य आ ही गया। विषय था धोबियों का जीवन। आँख से देखा हुआ था; कानों से सुना; कपड़ा फींचने का लयबद्ध छन्द। इस तरह से बाहर से भीतर आकर शरीर के मध्य कोई रासायनिक प्रक्रिया-सी घटित हो गई। उस पद्य में 'विहान' शब्द का व्यवहार किया गया था। तब, उसका असली अर्थ मैं नहीं जानता था। मैंने इतने से ही किला फ़तह कर लिया था। तभी हितैषियों ने एक ही वाक्य कहा था- हाँ, अब तुम कवि हो गये हो।

कुछ दिन बाद ही विशेषज्ञों से विचार कर तुरन्त निर्णय दे दिया कि तब तक सतुआ बाँधकर पीछे पड़कर मैंने जो पद्य आदि लिखे थे, वे सब अपदार्थ हैं। उनका छन्द, शब्द-प्रयोग अथवा भाव कुछ भी प्रस्तुत करने योग्य नहीं है। समालोचना में सहृदयता होने की बात न उठाकर मैंने सश्रम अनुशीलन का दण्ड सिर-माथे ले लिया।

यह तो हुई पैरों चलने के पहले घुटने-घुटने चल लेने की कथा।

होनहार विरवान के होत चीकने पात अथवा पूत के पैर पालने में ही दिखाई दे जाते हैं।

चारों ओर मुँह मारते-मारते इस बार चारे के एकदम पास पहुँच गया। चारा निगलने के पहले उस पर आघात करना पड़ता है।

मैं क्यों कविता नहीं लिखता हूँ- मुझसे यदि यह प्रश्न पूछा जाता, तो मेरे लिए उसका उत्तर देना सरल रहता। वह मेरे स्वभाव से भी मेल खाता।

कविता लिखने से पेट नहीं भरता वह ढोल पीटकर बताने की बात नहीं है। इसे तो सभी जानते हैं।

इसके अलावा सभी की कविता का मिज़ाज एक-सा नहीं होता है। बैठते ही किसी की लेखनी पर माँ सरस्वती आ विराजती हैं और मेरे जैसे व्यक्ति को माँ सरस्वती नाक में नाथ डालकर दिन-प्रतिदिल गली-गली घुमा मारती है। अन्त में कागज-कलम लेकर मन को दबाकर बैठने पर भी मौका पाते ही मन बीच-बीच में उखड़ जाता है। एक बार लिखकर दस बार काटना पड़ता है। दस्ता-के-दस्ता कागज़ बरबाद हो जाते हैं। कविता लिखना न हुआ, मानो राजसूय यज्ञ हो गया।

लक्ष्मी छोड़कर ऐसा कवि कविता क्यों लिखेगा?

ठोंक-पीटकर किसी को सज्जन बनाना ऐसी बाङ्ला में एक लोकोक्ति है। मेरे कवि होने के पीछे एक दिन संयोग वही घटित हो गई।

गद्य से पद्य में मेरा आना शायद इसलिए सम्भव हो सका कि मेरा वह गद्य था छिन्न-विच्छिन्न प्रायः पद्यधर्मी। लिखालिस सामान्य व्यवहार योग्य रसहीन गद्य नहीं। शायद इसीलिए कथा-कहानी से आगे बढ़कर मैं कथा-साहित्य में अपना स्थान नहीं बना सका।

शायद यह कहना सोलह आना प्रासंगिक न होगा, तो भी बचपन की एक अभिज्ञता की कथा कहे बिना मैं नहीं रह पा रहा हूँ।

'ग्यारह वर्ष की उम्र में मैं एक बार बीमार होकर प्रायः मरणासन्न हो गया था। जब धीरे-धीरे मुझे होश आया तब मेरी स्मृति पूरी तरह से जा चुकी थी। बड़े कष्ट से सीखी हुई वर्णमाला भी मैं पूरी तरह भूल चुका था। किताबों की ओर आश्चर्य से देखता रहता। चलना-फिरना भूल चुका था। तब एक खाते पर सारे दिन केवल आड़ी-तिरछी रेखाएँ खींचता रहता। केवल आँखों देखी वस्तुओं को आकार देने के प्रयास में मेरे दिन कटते। गला बैठ जाने से केवल चीं-चीं की आवाज़ निकलती।

सामने की नोंना भरी दीवार में बडौल प्रकार के धब्बों को देखकर अनेक प्रकार के आकारों की कल्पना करता रहता।

बहत्तर दिनों बाद गला भात खा सका। पहले उसका स्पर्श, फिर उसका स्वाद, तब उसकी गंध। इसके पश्चात सुन सका पास के गिरजाघर का घंटा। उसके बाद माँ का मुख देख सका। आँखों में रोशनी आने पर चित्र आँकने लगा। मेरी पाँचों इन्द्रियों की पुरोहित केवल आँखें हैं, इसे मैं उसी समय जान सका था। इसके साथ यह भी जान गया कि बाहर का यह पंचभूतात्मक जगत, जिसे हम विश्वप्रकृति के रूप में जानते हैं वह हमारी पंचेन्द्रियों के कंधों पर बैठकर ही हमारे मन में स्थान प्राप्त कर पाता है।

भाषा का इतिहास भी इस बात की पुष्टि करता है। घुटनों चलने से धूल-धूसरित दोनों हाथों से मुक्ति पाकर यह मनुष्य अपनी देहयष्टि के सहारे खड़े होकर प्रकृति का मुकाबला करना शुरू करता है। छू-छाकर, चखकर, सूँघकर जिस संसार को वह समझ पाता था, उसे वह धीरे-धीरे दूर से देखकर, सुनकर ग्रहण करने लगा। शब्द के अनुसार यथातथ्य धारणाओं को उनसे विभिन्न कामों से जोड़ लिया- इसी से हुआ भाषा का सूत्रपात। खाली ध्वनि कंठ से टकराती है, फिर दांतों-होठों से अनेक प्रकार से खोलती हुई परस्पर सम्बद्ध हो जाती है, इसी से कहने योग्य बात की निर्मिति होती है। भाषा हाती है मनुष्य की बाह्य और अन्तः प्रकृत की सवाक् छवि।

शब्द के माध्यम से ही हम विश्व ब्रह्माण्ड को उपलब्ध कर पाते हैं। सबको हम अपनी मुट्ठी में कर लेते हैं। इसीलिए शब्द हो गया है हमारे मन का हथियार।

हम जिन्हें मूक पशु कहते हैं, उनके मुख में वाणी अथवा शब्द न रहने पर भी भावभंगी से मन की बात जनाने योग्य उनके पास भी साधन रहता है। इंगित और इशारा भी एक दृष्टि से भाषा की सीमा में आ जाता है।

परम्पर मिलने का प्रतीक हो गयी है भाषा। केवल प्राणी के साथ प्राणी का नहीं वरन प्राणी के साथ प्रकृति से संपर्क का भी सुंदर सहारा है भाषा।

भाषा का काम ही है विच्छेद को मिटाना। दूसरे के और निकट होना छू-छाकर, हिला-डुलाकर, स्वाद-गंध लेकर; देख-सुनकर मनुष्य धीरे-धीरे जो प्रकृति को पहचान रहा है, जिसके साथ अपने को जोड़ रहा है, उसके नामकरण में भी रहती है मनुष्य की आत्मा की छाप। भाषा के इस प्राकृतिक गुण के कारण ही हम पृथिवी को स्पर्श के द्वारा प्राप्त कर पाते हैं।

इस तरह आकाश-पाताल की सोचकर जो मर रहा हूँ उसका एक ही कारण है कि कविता क्यों लिखता हूं, जीवन में इससे कठिन प्रश्न के सामने मुझे इसके पहले कभी नहीं होना पड़ा।

कविता मेरे अन्दर थी नहीं। बाहर से मेरे ऊपर थोपी गई है। मुझे अपने को जबरदस्ती कवि बनाना पड़ा है। बचपन में मेरे जिन हितैषियों ने मुझे कंधे पर बिठाकर पद्य के रास्ते में खड़ा कर दिया था, मेरे लिए उनके प्रति कृतज्ञ न होने का कोई उपाय है?

गद्य के द्वारा इस समय जो सब मामूली-से-मामूली काम कराये जा रहे हैं, वे काम भी पहले पद्य के हिस्से में आते थे। इसी तरह कविता के जो काम पहले केवल पद्य के अख्तियार में ही थे, आज गद्य भी उनमें शरीक हो गया है।

सत्य कहूँ तो, गद्य-पद्य के बीच अब और जेलखाने की ऊँची दीवार खड़ी करना शोभा नहीं देता।

कविता में इसीलिए आज गद्य की इतनी भरमार है। किन्तु, इसका अर्थ यह नहीं है कि पद्य को नकार कर कविता में गद्य ही सर्वेसर्वा हो जायेगा।

इसलिए गद्य से पद्य में अथवा पद्य से गद्य में आने-जाने में मुझे किसी तरह की दिक्कत महसूस नहीं होती है।

बातों से चिउड़ा नहीं भींजता है, किन्तु मन भींग जाता है। दूसरे के मन को हिलाया जा सकता है। इसी से काम हो जाता है। कथनी और करनी का मध्यस्थ है मन। मन को चला पाने से ही हाथ चलता है।

मैं कविता के द्वारा मनुष्य के हाथों को इस तरह काम में लगाना चाहता हूँ, जिससे दुनिया को मैं अपने मन-मुताबिक बदल सकूँ।

रवीन्द्रनाथ ने कविता में चित्र और गीत का हर-गौरी मिलन देखा था। कविता उनके लिए थी सचित्र गान अथवा वाङ्मय चित्र।

सच बात कहूँ तो मेरे कंठ में गीत होता तो मैं जीवन भर गीत-रचना ही करता रहता। गीत न बाँध पाने के कारण ही मैं कविता लिखता हूँ। गीत के सबसे पास होने के कारण ही लिखने के लिये मैंने कविता को चुना है।

मैं अधिक समझ सकता हूँ कि मेरे इस लेख में कवि की कैफियत नहीं है। है अकस्मात जिरह में पड़ जाने पर अपना ऐब छिपाने का व्यर्थ प्रयास।

याद आ गया, बहुत दिन पहले एक बार किसी के न चाहने पर भी अपनी ओर से इसका जवाब दिया था :

''मैं जो चाहता हूँ बातों को
अपने
पैरों के ऊपर खड़ा करना।
मैं तो चाहता हूँ
प्रत्येक परछाई में आँख फूट उठे
मैं नहीं चाहता कि कोई
मुझे कवि कहकर पुकारे
मैं तो बस इतना चाहता हूँ,
कि जीवन के अन्तिम क्षणों तक
कंधे-से-कंधा मिलाकर मैं बस चलता रहूं, चलता रहूँ।
और फिर अपनी कलम
ट्रेक्टर के पास रखकर, बस इतना कह सकूँ-
कि भाई, यही मेरी बिदाई है कि अब तुम मुझे
थोड़ी-सी अग्नि दे दो।''

सुभाष मुखोपाध्याय की कुछ कविताएं

सीमांत की चिट्ठी

मैं तुमको भूल न पाया
तुम भूल न जाना मुझको
तुम्हारी हज़ार-हज़ार आँखें
देख रहीं तारों से मुझको।

पर्वत मेरे पास खड़ा है
अगिन रंग का हरा इलाक़ा
हाँ, यहाँ प्रस्तुत हूँ मैं
और प्रतिश्रुत पौरुष मेरा।

तुम सब हो अनथक साथी एक-एक खेत में,
तुम्हारे हाथ की फ़सल
भूखी मज्जा में समा जाती है -
तभी तो बढ़पाते हैं हमारे क़दम
तुम्हारे ही हाथ का वज्र
शत्रुशिविर में चलाते हैं हम।

तोड़ दो ज़ंजीरें, हाँक लगी है चारों और
मेरे मन में, इधर धधक उठती है निर्मम घृणा
मैं देख रहा हूँ दुश्मन की जलती आँखों में-
जीवन-दान की याचना।

('चित्रकुट' से)

एक कविता के लिए

एक कविता लिखी जाएगी।
उसके लिए ही आसमान
आग की नीली शिखा की तरह
क्रोध में बिफर रहा समन्दर
अपने डैने फड़फड़ा रहा है तेज़ झंझावत,
धुएँ-जैसी खुलती हैं बादलों की पिंगल जटाएँ
बिजली की कड़क
काँपने लगता है जंगल
सिर धुन रही पेड़ों की फुनगियाँ
गिरने के डर से सिर कूट मर रही हैं
बार-बार कड़कती है बिजली
और उसकी चौंध में
...एकबारगी झिलमिला उठता है सबकुछ
ख़ून के सुर्ख आईने में देख रहा अपना चेहरा
राख से पुता समन्दर।
एक कविता लिखी जाती है, इसीलिए।
एक कविता लिखी जाएगी, इसीलिए
पता नहीं कौन हैं जो दीवारों पर
किसी अनागत दिन के फ़तवे चिपका जाते हैं?
मृत्यु के आतंक को
फाँसी के फन्दे से लटकाकर
जुलूस आगे बढ़जाता है,

गान उसके गूँजते आसमान पर और हवा में
उसके गर्जन में, उसके नखदर्पण पर
अंकित होती है एक नई धरती-
इसके अकूत सुख और असीम प्यार के लिए ही,
लिखी जाती है - एक कविता।

('अग्निकोण' से)

आग के फूल

तूफ़ान सिर पर ढोये, आ रहे हैं हम।

अपने बिबाई-फटे कीचड़ सने पाँवों में
और शान चढ़ाने वाले पत्थर में
आग के फूल बटोर
आ रहे हैं हम।

पहले हमारी आँखों में थे आँसू
अब है आग
हाड़-पिंजर से दीखने वाले लोग
अब वज्र तैयार करने वाले कारखाने हैं।

जिनकी संगीनों में से चिलक रही हैं बिजली
वे सामने से हट जाएँ।
हमारे लम्बे-चौड़े कन्धे की ठोकरों से
गिर रही हैं दीवारें टूट-टूटकर।
दूर हटो!

हम सारा गाँव ख़ाली कर आ रहे हैं।
खाली हाथ नहीं लौटेंगे।

('फूल फुटक' से)

चाहे जितनी दूर जाऊँ

मैं चाहे जितनी भी दूर जाऊँ
मेरे संग चला आता है
लहरों की माला गुँथी
एक नदी का नाम-
मैं चाहे जितनी भी दूर जाऊँ।

मेरी आँखों की पलकों के
लिपे-पुते आँगन में चले आते हैं
अनगिनत क़तारों में
लक्ष्मी के पाँव।

मैं चाहे जितनी भी दूर जाऊँ

('जत दुरेई जाय' से)

फूल खिले न खिले

फूल खिले न खिले
आज बसन्त है।
पथरीले फर्शबन्द फुटनाथ पर
पत्थर में अपने गाँव रोपकर
उग आने वाला जारुल का पौधा
अपने नन्हें-नन्हें पत्तों के साथ
हँस रहा है बुक्का फाड़कर,
फूल खिले न खिले
आज बसन्त है।

रोशनी की आँखों में काला चश्मा डाल
और फिर उसे निकाल -
मनुष्य को मृत्यु, की गोद में सुलाकर
और फिर उठाकर
जो दिन राहों से गुज़र चुके हैं
वे तो अब न लौटें।
देह पर पीली साँझ पोते
एक-दो पैसे पाकर
जो हरबोला बालभगत
कोयल-सी कूक भरा करता था
- उसे भी हाँकते हुए ले गये वे दिन।

लाल स्याही से लिखी
पीली चिट्ठी की तरह
सारा आकाश सिर पर उठाये
इसी गली की वह काली-कलूटी अधेड़-सी लड़की
रेलिंग से अपना सीना टिकाए,
पता नहीं, क्या कुछ उल्टा-सीधा सोच रही थी-

और ठीक इसी घड़ी
अचानक हैरानी में डालकर
देह पर चढ़बैठी यह मुँहजली तितली
जा, कहीं डूब मर मुई!

और इसके बाद धड़ाम से बन्द हो गया दरवाज़ा।

अन्धकार में मुँह पर हाथ रखकर
रस्सी-जैसा बटा वह पौधा
तब भी, मुस्करा रहा था।

('फुल फुटक' से)

लाल गुलाब के लिए

मेरा प्रिय रंग है लाल
मेरा भी प्रिय फूल है गुलाब

मैं लाल गुलाब के लिए ही
लड़ता रहा हूँ।

ज़रा आँख उठाकर तो देखो
सागर से हिमालय तक
हमारा शोकाकुल प्रेम तक रहा है
अपनी ही माटी की ओर।

आज तलक गुलामी की ज़ंजीरों के घाव
रिस रहे हैं,
सूख नहीं पाए साँसों के ताने-बाने
किसी सरगम में बँध नहीं पाए अब भी;
सर्वनाश की कगार से
यह पृथ्वी हमेशा की तरह
आज भी पीछे नहीं हट पायी।

खेतों की उबड़-खाबड़ जमीन की तरह
औंधा पड़ा है यह समय
इस पर चलते हुए-
तकलीफ़ होने पर भी
मुझे पता है कि इसके गर्भ में
डाले गए हैं बीज।
हमारे वर्तमान के समस्त अभिमान
जो निराश, आहत और अशान्त हैं
अपनी आँखों से आँसू पोंछकर
मनाएँगे, नवान्न का त्यौहार।
लाल गुलाब को-
अब अपनी आँखों में नहीं
अपने सीने में सँजोकर रखना होगा।
सीने में सहेजकर ही की जा सकेगी उसकी रक्षा।

मेरा प्रिय रंग है लाल
मेरा प्रिय फूल है गुलाब।

अपने हृदय में साहस बटोरकर,
उस लाल गुलाब के लिए ही ठाने हुए हैं हम
अपनी लड़ाई।

('काल मधुमास' से)

लील रहा है अन्धकार

सिर के ऊपर लटका
बेजार पंखा
लगता है
अब गिरा...तब गिरा।

उसकी नरम उसाँसें बन्द होने को हैं
धुनी हुई रुई के फाहों-सी उड़ती हैं
टूटी-फूटी...कविताएँ
मूर्तियाँ
तस्वीरें।

भाँहों के बीच रह-रहकर
चिलकने लगते हैं
सहारा और गोबी के रेगिस्तान।

जब कभी बाहर तकता हूँ
तो पाता हूँ फुटपाथ पर
बैसाखी से टिका हुआ है वक्त।

और इधर मेरे इर्द-गिर्द
कमरों में पसरा अँधेरा
सबकुछ निगलता जा रहा है -
मेज़ कुर्सी आईना
किताबों की आलमारी
जूते-कपड़े और दूसरी तमाम परेशानियाँ
हलकी और भारी
देखो तो सही
अँधेरे लील रहा है हमारा सबकुछ
हमारा भूत और भविष्य
साथ ही, देश को चाहने का गौरव।

('चइचइ-चइचइ' से)

कौन जाग रहा है

पता नहीं, कब, मुँहअँधेरे,
इस शहर ने
अपनी लम्बी-चौड़ी मुट्ठी खोली
और बिखेर दिया था हमें दूर...दूर
इसके बाद उतरी शाम ने
हम सबको अपनी उँगलियों से बीन-बीन कर-
एक जगह समेट दिया और चली गयी।
बाहर,तमाम रोशनी को सड़क पर खड़ा कर
दरवाजे भिड़ने वाली आवाज़ के साथ
एक-एक घर अँधेरे में पोत देगा, इसी घड़ी
यह शहर।

अभी, इसी क्षण खून की एक-एक बूँद में
सुन पड़ेगी,
महाकाल की घनगरज हाँक :
कौन जाग रहा है?
प्यार के देह से धूल झाड़ते-झाड़ते ऊँचे स्वर में
गर्व से कहेंगेः 'हम!'

('जत दुरेई जाय' से)

ज़्यादा नहीं कुछ चाहिए एक अदद आदमी को

उसे चाहिए एक दोस्त
और एक दुश्मन
एक अकेले आदमी को चाहिए
बहुत दूर निकल जाने के लिए-
एक पैदल राह।
उसे चाहिए एक माँ,
एक लम्बी उम्रवाली
ममतामयी माँ।
एक आदमी को चाहिए
सुबह सवेरे कोई एक अखबार
उसे चाहिए कोई ग्रह
कोई पृथ्वी
महाशून्य तक यात्रा का कोई पथ
और तेज़ गतिवाला कोई स्वप्न।
यह सब ऐसा कुछ ज्यादा भी नहीं
बल्कि कहना चाहिए
कुछ भी नहीं।
एक अकेले आदमी को ज्यादा कुछ नहीं चाहिए
उसे चाहिए सिर्फ यह वरदान
कि कोई करता रहेगा उसका इन्तज़ार।

(जल सइते से)

मेरा काम

मैं चाहता हूँ,
मेरे तमाम शब्द
अपने पाँवों पर खुद खड़े हो सकें।
मैं चाहता हूँ
मेरी छाया तक की
आँखें खुल जाएँ
तस्वीरें-जो ठहरी हुई हैं
डग भरने लगे।
मैं नहीं चाहता-
कोई मुझे कवि कहकर पुकारे
जीवन की अंतिम घड़ी तक
कंधे से कंधे भिड़ाकर
मैं चलता रहूँ...बस....!
और कभी तो मैं अपनी क़लम
ट्रैक्टर के पास रखकर कह सकूँ, बस भाई,
अब मेरी छुट्टी करो
और थोड़ी-सी आग दे दो मुझे!

सभी कविताओं का बाङ्ला से हिन्दी अनुवाद : रणजीत साहा

सुभाष मुखोपाध्याय और अमृत राय

चिट्ठियों के आईने में

डॉ.रामशंकर द्विवेदी

बांग्ला कवि सुभाष मुखोपाध्याय की एक पुस्तक 'चिठिर दर्पणे' (पत्रों के दर्पण में) कलकत्ता में छपी है। इस पुस्तक का धारावाहिक प्रकाशन बांग्ला पत्रिका 'देश' में कुछ दिनों हुआ था। लेखक के घुमक्कड़ स्वभाव के कारण इसका लेखन ही काफी समय तक बाधित रहा। बाद में पत्रकार तापस गंगोपाध्याय और बादल बसु के असीम धैर्य के कारण इन पत्रों का पुस्तकाकार प्रकाशन हो सका।

अब तक मैंने हिन्दी, अंग्रेजी, बांग्ला अथवा गुजराती और उर्दू जितने पत्र संकलन देखे हैं, उनकी तुलना में 'चिठिर दर्पणे' पत्र संकलन का प्रस्तुतीकरण नितान्त भिन्न प्रकृति का है। इसमें न तो काल-क्रम का अनुसरण है और न लेखक क्रम का, न यह ऊपर से देखने में पत्र संकलन-सा लगता है। सुभाष मुखोपाध्याय के अन्य गद्य लेखन की तरह इसका स्वास्थ्य और व्यंजना अत्यंत विशिष्ट और नवीन है। 'चिठिर दर्पणे' लेखक की जीवन-छवि के साथ-साथ समकालीन, नवीन, प्राचीन लेखकों के चलमान जीवन की तरंगित छवि भी प्रस्तुत करती है।

बांग्ला, असमिया, उड़िया के विख्यात लेखकों के साथ-साथ इसमें हिन्दी प्रदेश के भी कुछ लेखकों, समीक्षकों और चित्रकारों का उल्लेख है। इस पुस्तक के प्रति मेरे आकर्षण का कारण हिन्दी के विख्यात रचनाकार अमृत राय के बांग्ला में लिखे हुए कुछ पत्र हैं। हिन्दी का एक लेखक एक प्रांतीय भाषा में भी पत्र लिखता है। इन पत्रों में उसकी सोच क्या है, उसकी मनःस्थिति क्या है, दो भाषाओं के रचनाकारों के बीच कैसा सौहार्द्र है, इस सबको यहाँ देखा जा सकता है। अमृत राय और सुभाष मुखोपाध्याय दोनों में अत्यन्त पारिवारिक संबंध थे। अमृत राय के पुत्र की बीमारी में मुखोपाध्याय दंपत्ति ने उन्हें उल्लेखनीय सहायता दी थी।

हिन्दी के जाने-माने उपन्यासकार और प्रामाणिक अनुवादक अमृत राय का हिन्दी जगत में वैसा मूल्यांकन नहीं हुआ है जैसा होना चाहिए था। इसके दो कारण रहे हैं। एक, उनका प्रेमचन्द का पुत्र होना। दूसरा, एक विशेष विचारधारा से संबद्ध होने के कारण उसके घेरे से निकल कर विशाल हिन्दी जगत से उनका संबद्ध न हो पाना। दोनों ही कारण उनके एक संस्मरण ग्रन्थ में देखे जा सकते हैं। हिन्दी सेवी कामिल बुल्के पर लिखे उनके संस्मरण में इस प्रकार की चिन्ता की अभिव्यक्ति हुई है और अपने पुत्र की मृत्यु के बाद उन्होंने नियति को भी स्वीकार कर लिया था।

अपनी पुस्तक 'चिठिर दर्पणे' में सुभाष मुखोपाध्याय ने टिप्पणी करते हुए लिखा है :

पुरानी मित्रता

उन्नीस सौ उन्चास के मई मास में अमृत राय की एक चिट्ठी दीपक और चूहों के हाथ से कैसे बची रही यही आश्चर्य है। अमृत के साथ मेरा पहला परिचय उन्नीस सौ तैंतालीस ईस्वी में हुआ था, बम्बई में कम्युनिस्ट पार्टी की पहली कांग्रेस में। हम दोनों लोगों की ही उस समय कम उम्र थी। अमृत की बाईस और मेरी चौबीस। वह हिन्दी में लिखता है। किन्तु काशी का मानुष होने के कारण बांग्ला भी अच्छी जानता है। देश और पार्टी में इतना उतार-चढ़ाव होने पर भी हम लोगों की मित्रता में कभी भी दरार नहीं आयी। वह जो मुंशी प्रेमचंद का पुत्र है यह मैं उससे परिचित होने के बहुत बाद में जान पाया था। पी.सी.जोशी यदि न होते तो हम लोगों में इतना पहले जान-पहचान ही न होती। क्योंकि, पार्टी की पहली कांग्रेस में हम दोनों लोग ही जोशी के मनोनीत प्रतिनिधि थे। जोशी की दृष्टि में बुद्धिजीवी और लेखक-कलाकारों की विशेष कदर थी। पार्टी के निकटवर्ती व्यक्तियों को भी दर्शक के रूप में वे आदरपूर्वक निमंत्रित किया करते थे।

बम्बई में पहली पार्टी कांग्रेस के वे दिन कभी भी भुलाने के नहीं है। जीवन में वही पहली बार चार मीनार सिगरेट पीना। उस समय उसकी कीमत थी छह पैसा पैकेट।

पुरानी चिट्ठियों को पलटते समय सबसे पहले ही ठोकर खानी पड़ रही है। क्योंकि सन-तारीख का इन सब चिट्ठियों में कोई झंझट ही नहीं है। यहाँ तक कि डाकखाने की मुहर भी एकदम अपाठय है। फिर, किसी में दिन और महीना है तो सन नहीं है। अमृत की इस चिट्ठी में सन-तारीख नहीं है। सिर्फ डाकखाने की मुहर पढ़ी जा सकती है। पत्र इलाहाबाद में 10 मई को डाला गया है। उसकी अधिकांश चिट्ठियाँ बांग्ला में लिखी गयी हैं। लिखा है:

'बहुत दिन हो गये तुम्हें पत्र भेजा था, मिला नहीं? अथवा जवाब देने का मन नहीं हुआ? हो सकता है तुम मेरी सूरत ही बिलकुल भूल गये हो।

'किन्तु में तुम्हें किसी भी दिन नहीं भूल सकूंगा।...

उसका पत्र मुझे न मिलने का कारण यह था कि मैं उस समय दमदम जेल में दूसरी बार बिना मुकदमें के आठ मास के ऊपर तक बन्द था। अमृत को निश्चय ही इस बात का पता नहीं था।

कांग्रेस फॉर कल्चरल फ्रीडम

अमृत राय उन दिनों अपना हिन्दी मासिक पत्र 'हंस' निकाल रहा था। मैं 'परिचय' और 'हंस' के बीच उन दिनों एक आदान-प्रदान का संबंध बनाना चाहता था। अमृत ने एक पत्र में लिखा है। (वह मुझे प्रायः सभी पत्र बांग्ला में लिखा करता था। काशी में रहने वाला व्यक्ति है, इसीलिए उम्मीद से अधिक ही अच्छा बांग्ला जानता है।) मेरा पहला न्यूज बुलेटिन यदि कल्चरल फ्रीडम कांग्रेस के संबंध में हो तो क्या उससे तुम्हें कोई आपत्ति है? पी.सी. जोशी का 'इंडिया टुडे' जो छप रहा है, उसके लिए भी मैंने वही चीज लिखी है और मेरा विचार हे कि वही तुम्हारे काम भी आ सकती है। लेख के लिए मैंने कई अच्छे साहित्यकारों से भेंट की थी। लेख खराब नहीं है।

फोटो केप्शन

मैंने प्रमाणित करने की चेष्टा की है कि हिन्दी के किसी भी बड़े साहित्यकार ने इस सम्मेलन में योग नहीं दिया है, यद्यपि 'अज्ञेय' जैसे हिन्दी के एक विख्यात साहित्यकार ने इस सम्मेलन की अध्यक्षता की थी। परन्तु महादेवी वर्मा, बच्चन, इलाचन्द्र जोशी- सभी को मैंने 'कोट' किया है। सम्मेलन बम्बई में हुआ था।

जो सब लेखक एक समय प्रगति आंदोलन के एकदम निकट आ गये थे, इस पर्व तक उनमें से बहुतों को हमने खो दिया था। जिनके निकट अपने साहित्यिक जीवन में मैं अनेक प्रकार से ऋणी हूं, उन बुद्धदेव बासु ने भी इस सम्मेलन में योग दिया था। 'परिचय' में इसी संदर्भ में मैंने उन्हें एक खुली चिट्ठी लिखी थी।

हंस मध्ये बको यथा

मुंशी प्रेमचंद का पुत्र अमृत मेरा बहुत पुराने दिनों का मित्र है। अपनी 'हंस' पत्रिका को खड़ा करने का प्रयास वह उन दिनों भी आगे बढ़ा रहा था। इसके साथ ही उसका प्रयास मुझे भी किसी न किसी रूप में जोड़े/रखने का था।

अमृत को मैं बांग्ला में चिट्ठी लिखता हूँ। बांग्ला में ही वह उत्तर देता है। कितनी बार मन-ही-मन संकल्प किया है कि मैं उसे अब हिन्दी में पत्र लिखूँगा। उससे मेरा भी हिन्दी सीखना हो जायगा और वह अच्छा भी लगेगा।

किन्तु अन्त में वैसा कुछ भी नहीं हुआ। लगता है उसका एक कारण यह है कि उसकी बांग्ला जितनी अच्छी है, उसकी तुलना में मेरी हिन्दी उसकी बांग्ला के बाल बराबर भी नहीं होगी। असल में अमृत उस समय की काशी का व्यक्ति है जब काशी में बंगालियों की रेलम पेल थी। इसके फलस्वरूप काशी की आबोहवा में बांग्ला भाषा बहती फिर रही थी।

दुख का विषय है कि बंगाल में मेरे जमाने में वैसा कुछ भी नहीं था।

दो-एक जगह थोड़ा-बहुत अटकने पर भी अमृत सरसर बांग्ला लिखता जाता है।

उन दिनों साहित्य में 'हंस' का बड़ा नाम था। अमृत के कम्युनिस्ट होने पर भी हिन्दी में प्रगतिवादी शिविर उसे बहुत अच्छी नजरों से नहीं देखता था। क्योंकि उसका लेखन था खूब मुक्त और स्पष्ट। वह मार्क्सवाद की वर्दी पहनाने में विश्वास नहीं करता था। दूसरी ओर, उसकी हिन्दी थी बोलचाल के निकट।

कट्टर हिन्दीवाले उस पर खफा थे। कारण, हिन्दी और उर्दू के बीच की दीवार को वह मेट डालना चाहता था।

प्रगतिवादी शिविर एक अन्य कारण से भी अमृत के ऊपर (आक्रमण करने के लिए) खड्गहस्त लोग एक तरफा होकर सिर्फ हिन्दुओं की धर्मान्धता को ही बढ़ा-चढ़ाकर देखते हैं, वो मुसलमानों की साम्प्रदायिकता को देखकर भी नहीं देखते हैं।

फलस्वरूप प्रगतिवादी शिविर से एक समय उसका नाम काट दिया जाता है। 'हंस' भी अन्त तक टिका नहीं रह सका। 29-10-51 को इलाहाबाद से अपने पुराने डेरे से अमृत लिखता है: इस बार जाना नहीं हुआ। फरवरी तक प्रतीक्षा करनी है। सबसे पहले में यह जानना चाहता हूँ कि 'हंस' तुम्हें मिल रहा है या नहीं?

'मैं अपने कारोबार को बनारस से उठाकर यहीं लाना चाहता हूँ। किन्तु आजकल के दिनों में वह इतना सहज तो नहीं है? स्थान नहीं मिल पाता है। नयी जगह पर 'सेट अप' होने में तुम तो जानते हो और भी अनेक मुश्किलें होती हैं। इन सब कारणों से यहाँ अपने काम-काज की व्यवस्था करने में अनेक कमियाँ रह जाती हैं। 'हंस' में भी उस व्यवस्था की कमी रिफ्लेक्ट होती है। उसके सम्पादन में, प्रबन्धन में सभी और। किन्तु मुझे 'सेटअप' करने में और अधिक समय नहीं लगेगा।

'मोटे रूप में सोच रहा हूँ कि छह कहानियाँ न जायें हर महीने-एक सोवियत कहानी, एक चीनी कहानी, एक उर्दू कहानी, एक बांग्ला कहानी और दो हिन्दी कहानियाँ। ऐसा यदि कर सकें तो पत्र (हंस) बहुत जल्दी लोकप्रिय हो उठेगा।...प्रगतिशील साहित्य के पक्ष में वह खूब हितकारी होगा- हमारे लेखकगण भी (आदर्श) मॉडल के हिसाब से खूब अच्छी-अच्छी कहानियाँ पढ़सकेंगे।

'ऐसा है इसलिए तुम्हें यह काम सौंपा गया है कि तुम स्वयं बांगला की बारह सर्वश्रेष्ठ कहानियों को चुनकर मुझे भेजो अथवा बताओ क्या कहाँ पाऊँगा इत्यादि। काम बहुत जरूरी और तुम्हारे लिए सरलता से साध्य है।'

बांग्ला भाषा पर अमृत का अच्छा अधिकार है, इसका यह एक प्रमाण रहेगा। किन्तु (दूसरी) तरफ उसके 'हंस' (पत्र) के बीच में निरा बगुला हूँ।

अमृत राय

अमृत पत्नी सहित आया था। हम लोगों के साथ ही (ठहरा) था। इलाहाबाद वापस जाकर लिखता है: (21-4-52) (जीर्ण, दीमक, खाये पत्र में) 'उस दिन कैसी अप्रत्याशित भीड़ थी, फिर भी हम लोगों को कोई कष्ट नहीं हुआ है एवं इसका श्रेय तुम लोगों को ही देना होगा।

'मैं यह 'शान्ति संस्कृति' अंक (हंस का) निकाल कर मुश्किल में पड़ गया हूँ, कारण खूब जोरों से बिक नहीं रहा है।...पार्टी से कोई भी सहायता नहीं पा रहा हूँ। यह सब हुई काम की बात और मुझे आशा है कि तुम मन लगाकर मेरा काम करोगे।

'हम लोगों को तुम्हारे यहाँ कितना सुख मिला, सचमुच में इसका वर्णन नहीं कर सकूँगा। तुम तो मेरे लिए सदा के जाने-माने पागल थे, किन्तु तुम्हारी पत्नी और भाभी को यह मैंने पहली बार ही देखा है (बीच-बीच में पत्र कीड़ों द्वारा खाया हुआ है।) और दोनों लोग ही मुझे कितने अच्छे लगे हैं...कह न सकूँगा, फिर कहने की जरूरत भी महसूस नहीं करता हूँ, बात अत्यन्त सेन्टीमेंटल लगेगी। इसलिए मैं सच ही कहूँगा। यू हैव ए जेम ऑफ ए गुड वाइफ, सो सिम्पल एण्ड सो गुड एण्ड सो इन्टेलीजेण्ट...।

'मैं तुम्हें हिदायत दे रहा हूँ जिससे यह पत्र गीता के हाथ में न पड़े।'

महादेव प्रसाद साहा ने इलाहाबाद से (11-8-52) लिखा है: 'तुम्हारी पुस्तक यथा समय मिल गयी है। कलकत्ता लौटकर कई रचनाओं का अनुवाद करूँगा। तुम्हारी रचनाएँ मुझे बहुत अच्छी लगी हैं। ऐसा लगता है कि यह बिना कहे भी चल सकता है।

'तुम्हारी सारगर्भित छोटी कविता और बऊदी का लेख विशेष अंक के लिए मिल गया है। 'हंस' के विशेष अंक के लिए चमत्कारपूर्ण मालमसाला मिल गया है। वहाँ पर जो सिम्पोजियम तैयार हो रहा है, उसकी एक कॉपी अमृत को भेजने की बात थी। चीनपू बहुत परिश्रम कर रहा है। नरहिर को भेजने की बात। दोनों लोगों से भेट हो तो याद दिला देना। कौन कहेगा बांग्ला महादेव की मातृभाषा नहीं है?

अमृत राय ने लिखा (12-8-52) 'चिट्ठी जबलपुर से आने के बाद ठीक-ठाक मिल गयी है, यही कोई तीन दिन पहले।'

'मैं अत्यधिक थकान अनुभव कर रहा है। पहले मैंने कभी भी उपन्यास नहीं लिखा है। जब मैंने लिखना प्रारंभ किया था तब मैंने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि मैं इस तरह की विपत्ति में पड़ जाऊंगा। खूब आनंद भी मिला है, यह भी कहा जा सकता है। फिर भी, असामान्य परिश्रम किया है। उपन्यास प्रेस में देने में अभी भी बहुत देर है। बहुत कुछ संशोधन करना होगा। अधिक लम्बा होता जा रहा है- मोटे रूप में छह सौ पृष्ठ। इतने पन्ने दुबारा लिखने पर तो मेरी

श्री शंभु मित्र के साथ सुभाष मुखोपाध्याय।

मृत्यु जरूरी हो जायेगी।

जिस श्रमिक बस्ती में तुम इन दिनों रह रहे हों, उसे अच्छी तरह से समझ कर तुम पूरी तरह एक चमत्कारपूर्ण उपन्यास की रचना कर सकते हो। जीविका के लिए क्या कर रहे हो, नया कोई काम मिला?

अमृत ने लिखा है (27.7.52) 'गांव में हाल में रह कर तुम क्या कर रहे हों मैं कुछ भी सिर-पैर नहीं समझ पा रहा हूँ। घर परिवार किस तरह से चलाओगे, इन सबको लेकर जरूर कुछ सोच रहे होंगे। जैसा भी हो, लिखने का कुछ काम काज मिला? तुम्हारी पुस्तक क्या प्रेस में गयी है? इस तरह से तो नहीं चलेगा भाई/शरीर स्वस्थ नहीं है, पैसे की व्यवस्था नहीं है, इस तरह से कितने दिन चलेगा?

'तुम क्या रोज कलकत्ता जाते हो? गीता? मैं ठीक से नहीं समझ पा रहा हूँ, कारण, नये परिचय में (परिचय के नये अंक में) वैसे का वैसा तुम्हारा नाम देखा था। इसका अर्थ हुआ कि तुम प्रतिदिन ऑफिस जाते हों। घर कब लौटते हो?

'तुम दोनों लोग ही गाँव गये तो हो? भाभी कहाँ रह रही हैं? 'हंस लिमिटेड' को अभी बातचीत ही चल रही है। बहुत बुरी दशा है। यदि कम्पनी तैयार नहीं होती है, तो 'हंस' बन्द करना ही पड़ेगा...देखता हूँ, कितना क्या कर सकता हूँ। इस समय तो पेकिंग जाऊँ...जाऊँ सोच रहा हूँ। पासपोर्ट के लिए अर्जी दी है। अगर पासपोर्ट की व्यवस्था होती है और रूपयों की भी व्यवस्था हो जाती है तो हो सकता है तुम भी चलो। क्या नहीं? जाना हो अच्छा है। इस संबंध में मुझे लिखो। गीता पेकिंग हो आयी है इस बार तुम भी चलो।...

'तुमने लिखा है कि तबीयत थोड़ी-बहुत अच्छी होते ही पूरी ताकत से ट्रेड यूनियन के काम में लग जाऊँगा। किन्तु यहाँ पर थोड़ा मुझे डर है। हो सकता है मेरी गलत धारणा हो। श्रमिक जीवन को आन्तरिक रूप से जानना, उसका परिचय और अभिसत्ता लाभ करना, हम लोगों के लिए एक बार ही अनिवार्य है, किन्तु हम लोगों के श्रमिक आंदोलन की वर्तमान में जो स्थिति है (और आगे भी), लेखक और कवि जनों के ट्रेड यूनियनिस्ट हो जाने से वे लोग कोई विशेष अभिज्ञाता संचित कर पायेंगे, इसमें हमें खूब संदेह है। ट्रेड यूनियन के कार्य की प्रकृति बिलकुल भिन्न है। तुम्हारे दृष्टिकोण, तुम्हारा जीवन-सभी को अलग तरह का होना होगा। तुम्हारा सोच, तुम्हारा चिन्तन सभी ट्रेड यूनियनिस्ट के हिसाब से होगा। कवि के रूप में तुम कुछ नहीं पाओगे। हो सकता है लिखने का समय भी न पाओ। यही मुझे एक डर है। सोच कर देखो। तुम स्वीकार करोगे कि यह नितान्त अजीब बात नहीं है।

'हिन्दी साहित्य की दशा बांग्ला साहित्य की तुलना में बहुत संगीन है। हम लोग और भी दुर्बल हैं, हम लोगों का साहित्य और भी अन्तः सार शून्य है। क्या कहूंगा? कोई लिख नहीं रहा है, एवं गत दो-तीन वर्षों में हम लोगों ने जो सब लिखा है, टिकेगा नहीं, निरा पोस्टर और नारों का साहित्य।

'हम सब लोग कुशल से हैं। बच्चे भी स्वस्थ हैं। इस समय सवेरे के नौ बजे हैं। दोनों लोग ही-आलोक और अमित-स्कूल गये हुए हैं। स्कूल खूब पास है।

'तुम्हारा नया निवास स्थान देखने की मेरी बहुत इच्छा है, किन्तु कब आऊँगा बताना कठिन है। अवकाश होते ही मैं आकर दस-पंद्रह दिन के लिए रुकना चाहता हूँ। मेरा पत्र करेक्ट करके वापस भेज सकोगे? मुझे बहुत लाभ होगा। सुधा प्रायः तुम्हारी चर्चा करती रहती है।'

मिट्टी के खिंचाव से

अमृत राय की '52 ईस्वी की चिट्ठी' 53 ईस्वी की चिट्ठियों में घुसी हुई है। उसने 26 मई को लिखा था, 'तुम्हारे पत्र में तुम्हारा यह नया ठिकाना देखकर बहुत खुश हुआ। जो कहते हैं कि तुम वहां नहीं रह पाओगे, वे सब बेवकूफ हैं वे यह नहीं समझ पा रहे हैं कि तुम किस कारण से, किस प्रेरणा से कलकत्ता से बीस-पच्चीस मील दूर व्यंजन नहेड़िया गांव में जाकर बस गये हो। तुम्हारे न मानने पर भी मैं जानता हूँ कि तुम अधिकतर मिट्टी के खिंचाव से ही वहाँ गये हो, सिर्फ इस कारण से नहीं गये हो कि पैसे के अभाव की पूर्ति नहीं कर पा रहे हो। सिर्फ इसी कारण से तुम शहर से इतनी दूर जाकर नहीं रह सकते थे। किन्तु, मिट्टी का जो खिंचाव रहता है एवं जिसे तुम अनुभव कर रहे हो, उसे और कोई दूसरा न भी समझे, किन्तु मैं एक व्यक्ति तो समझता ही हूँ। मैं जानता हूँ तुम वहीं रहोगे। और मैं तीन-चार मास के भीतर ही तुम्हारे पास वहाँ आऊँगा। तुमने एक बहुत बड़ा 'डिसीजन' लिया है और मेरा विचार है कि उसका कुछ जुड़ाव उस दिन की आलाप-आलोचना से जरूरी है, जिस दिन शाम को हम कुछ मित्रों ने तुम्हारे घर में बैठकर गपशप की थी-मोगीलाल (गांधी-गुजरात के) तुम, ननीबाबू (भौतिक), सिद्धेश्वर (सेन) और मैं।

'अच्छा भाई, ऐसा है तो अब परिचय (पत्रिका) का क्या होगा, उसे कौन चलायेगा।

दो पंख होते

मैंने भी एक बहुत बड़ा डिसीजन ले लिया है। इन कई महीनों के भीतर ही मैं 'हंस' से छुट्टी ले लूँगा। अर्थात मैं 'हंस' और आगे नहीं चलाऊँगा, पी.डब्लू.ए. को दे दूँगा। उन लोगों से बातचीत कर रहा हूँ। राजी हैं। राजी न होते तब भी मैं 'हंस' बन्द कर देता। बिलकुल पक्का निर्णय....'

'मैं प्रस्तावित अपने उपन्यास में लगा हुआ हूँ। एक डेढ़सौ पृष्ठों की पुस्तक बनेगी। 3/4 भाग पूरा हो चुका है।...

'यहाँ हम सब लोग अच्छी तरह से हैं। सुधा भी ठीक है। तुम्हें और गीता को नमस्कार कह रही है। मैं इसी सप्ताह के भीतर एक मास के लिए नैनीताल जाऊँगा।

'मेरी बांग्ला पढ़कर क्या तुम हँसोगे?

'मेरे दो पंख रहते तो मैं उड़कर तुम्हारे नये डेरे पर पहुँच जाता।'

एक वर्ष बाद इसी तारीख को (26-5-53) अमृत एक पोस्टकार्ड में लिखता हैः 'तुम पर मुझे बहुत क्रोध है। इस तरह चुप्पी लगाकर बैठे रहने का कोई अर्थ नहीं है। मैंने कई चिट्ठियाँ दी हैं। किन्तु, तुममें चेतना न जगा सका। गीता की बीमारी के संबंध में महादेव साहा के पत्र में जान सका। उसी विषय में पूछा था, किन्तु सब बेकार। समझ सकता हूँ कि खूब तकलीफ में हो। किन्तु ऐसे समय में भी यदि मित्रों को याद नहीं करोगे तो कब करोगे। यह तो निश्चय ही क्षुब्ध करने की घटना है। तुम जो भी कहो। जल्दी जवाब दो। मैं क्या सिर्फ सुख का ही साथी हूँ! मुझे तो अच्छा नहीं लग रहा है। इस तरह के मित्र तो जीवन में बहुत मिलते हैं, किन्तु मेरी दृष्टि में उनका कोई विशेष मूल्य नहीं होता।'

जोरदार खेल

इलाहाबाद से अमृत राय (27-7-53) लिखता हैः 'तुम्हारा 14 तारीख का पंत्र मिला...। आगे यदि कभी कुछ होता है तो मुझे नहीं भूलोगे।

'जिस जोरदार खेल की कथा तुमने लिखी है...सार्वजनिक हड़ताल, अन्ततः वह खेल हो गया। खूब जोरदार रहा कलकत्ता जैसा शहर दूसरा नहीं। पटना में ननी भौमिक से भेंट हुई थी। बात चलने पर ननी भौमिक ने कहा, 'कलकत्ता पागल शहर है, क्रोध में पागल हो उठता है।' ठीक ही कहा है।

'तुम्हारे और गीता के संबंध में कोई खबर नहीं मिली- मन में एक आशंका उठी कि शायद तुम भी गिरफ्तार हो गये। किन्तु निश्चय ही नहीं हुए हो, कारण, अखबार में नाम नहीं मिला।

'कुछ दिन माने सप्ताह, अर्थात महीने भर बाद कलकत्ता चलूँ (यह) सोच रहा हूँ। खूब इच्छा हो रही है, किन्तु छुट्टी नहीं मिल रही है।

'बांग्ला में आंदोलन में ज्वार आ रहा है। अच्छा देखा जायेगा। और इस बार संगठित रूप से काम होगा। यह भी इस सार्वजनिक हड़ताल में देखने को मिल जायेगा।

'मेरा उपन्यास 'बीज' सड़ रहा है। आजकल बाजार में कागज नहीं मिल रहा है और जब बाजार में प्रचुर मात्रा में कागज उपलब्ध था तब मेरे हाथ में एक भी पैसा नहीं था। इसी तरह से चल रहा है। नया कुछ विशेष लिखा नहीं है। 'डॉन वाज इन द एयर' - 'आकाश में डॉन' नाम से चीन (यात्रा) के संस्मरण लिख रहा हूँ... 'तुम अपने बारे में कुछ क्यों नहीं लिखते हो?...'

'परिचय' के सूत्र से

महादेव प्रसाद साहा उन्हीं दिनों अमृत राय के पास घूमने जाते हैं। मुंशी प्रेमचंद की पत्नी, अमृत की माँ (शिवरानी देवी) महादेव को अपने पुत्र की तरह ही चाहती थीं।

महादेव एक विचित्र मनुष्य था।

मैं उन दिनों कॉलेज का एक निरा छात्र था। 'अग्रणी' पत्रिका निकाल रहा था। 'अग्रणी' में मैंने जो कुछ लिखा है, वह सब महादेव के डाँटने पर। मैं उस समय लेबर पार्टी में लगा हुआ था। महादेव बराबर कम्युनिस्ट पार्टी में रहा।

उसका व्यक्तित्व द्वि-आयामी या त्रि-आयामी है, कहना मुश्किल है। बचपन से ही एकमुश्त राजनीति के अधिकार में था। अपने संबंध में मुँह में ताला लगाये रखने का उसका सदा का स्वभाव था। मातृभाषा हिन्दी होने पर भी बिल्कुल ही शुद्ध बांग्ला बोलता हैं राहुल सांस्कृत्यायन की तरह जो पहले बौद्ध मतावलम्बी थे और बाद में कम्युनिस्ट हो गये थे। महादेव भी संभवतः उस दल का था।

जैसा अगाध पंडित्य उसी तरह की असामान्य स्मरण शक्ति। जो जितना भी महापण्डित हो, सन-तारीख अथवा छोटी-मोटी यदि भूल करता है तो महादेव के सामने उसकी रिहाई नहीं है। बीच-बीच में बातें सुनकर लगता है कि व्यक्तित्व अत्यधिक दम्भी है। सामान्य व्यक्ति के सात खून माफ करने पर भी गण्यमान व्यक्ति के पान से चूना भी टपकने पर उसके शरीर में आग लग जाती है। इसका असली कारण है, अपनेको पण्डित मानने वाले स्वाभिमानी व्यक्ति का हरफन मौला स्वभाव होता है। आधी मैली धोती और कुर्ता। आज भी साधु सन्त जैसा चेहरा। कष्ट का जीवन जवान पर कटु राजनीति। यद्यपि असंभव कोमल मन। एकान्त रूप से ही मित्र वत्सल और सभी का शुभाकांक्षी। किसी से भी उन्हें कुछ नहीं चाहिए। ये लोग कभी भी नेता नहीं हो पाते हैं। एम.पी., एम.एल.ए. भी नहीं। ये लोग पार्टी के यशंवद और खिदमदगार होते हैं। इस तरह के लोग राजनीति में क्रमशः विरल होते जा रहे हैं। बाहर ये चाहे जितने मुखर हो पार्टी के भीतर ये लोग मन को दबाये रखते हैं। पार्टी के सात थप्पड़ खाकर भी ये आवाज नहीं निकालते हैं। पार्टी इनके लिए भक्त के भगवान की तरह होती है। ये लोग चण्डी पाठ तो थोड़ा ही करते हैं, किन्तु ये लोग पार्टी में जूता सिलाई के काम में अपने को विशेष रूप से समर्पित कर देते हैं।

इलाहाबाद से महादेव लिखते हैं (6-11-51): कहूँ पत्र पाकर कितनी खुशी हुई कि क्या...परिचय (पत्रिका) के लिए जो कुछ करने को कहा है आनंदपूर्वक करूँगा। मुझे लिखने के लिए कह रहे हो। किन्तु मेरी दौड़ (की सीमा) तो तुम्हारी जानी हुई है। एक-आध विषय थोड़ा-बहुत जानता हूँ। फिर भी, जो कर सकता हूँ उसे करने में कसर न लगाऊँगा।

'तुलसी रामायण के अनुवादक अध्यापक वारान्निकोव ने भारतीय भाषा, साहित्य इत्यादि के संबंध में बीस निबन्ध भेजे हैं अनुवाद करके भेजूँगा...'

इस बार भी वही अनुवाद। मूल लेख नहीं। एक प्रकार के लोग होते हैं जो प्रतिश्रुति और सहमति के डर से कभी कुछ मौलिक नहीं लिखते हैं। 'जीतीजागती लाइब्रेरी' महादेव उसी दल का (व्यक्ति) था।

रामशंकर द्विवेदी

जन्म : 1937 **शिक्षा :** आगरा विश्वविद्यालय से एम.ए.हिन्दी सर्वोच्च अंक प्राप्त करने पर स्वर्ण पदक के साथ उत्तीर्ण।

अनुभव : डी.वी.सी. पीजी कॉलेज में वर्ष 1965 से 1992 तक हिन्दी अध्यापन, हिन्दी विभागाध्यक्ष भी, बुंदेलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी की हिन्दी पाठ्यक्रम समिति समेत शोध समिति के नौ वर्ष संयोजक और कार्यकारिणी परिषद के तीन वर्ष तक सदस्य।

साहित्यिक यात्रा : बांग्ला की श्रेष्ठ साहित्यक कृतियों का 45 वर्षों से अनुवाद। बांग्ला के 22 साहित्यकारों की हिन्दी में अनूदित पुस्तकें प्रकाशित, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में पाँच सौ से अधिक ललित निबंध प्रकाशित। रवीन्द्रनाथ टैगोर तथा सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के सौंदर्य बोध पर शोध।

पुरस्कार सम्मान : बांग्ला-हिन्दी अनुवाद के लिए भारतीय अनुवाद परिषद, नयी दिल्ली के द्विवागीश पुरस्कार से वर्ष 2000 में सम्मानित। वर्ष 2004 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित, हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद की ओर से वर्ष 1998 में सम्मानित, भारतीय लेखन और पत्रकारिता के लिए 1998 में सम्मानित, पांचजन्य स्वर्ण जयंती पर राष्ट्रधर्म के सहायक संपादक के रूप में साहित्यकार डॉ.विद्यानिवास मिश्र से 1995 में सम्मानित।

संपर्क : 1260, नया रामनगर, पाठक का बगीचा, उरई (यू.पी.) 285001 **मोबाइल :** 098396-17349

स्मृति शेष सुभाष दा : संस्मरणों के आलोक में

डॉ.रणजीत साहा

भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता और साहित्य अकादेमी के संयुक्त साहित्य आयोजन मैथिलीशरण गुप्त राष्ट्रीय संगोष्ठी (1986) की तैयारी की सिलसिले में, मैं कोलकाता गया हुआ था। कार्यक्रम शुरू होने के एक दिन पहले मैं 'जात दुरेई जाय' (चाहे जितनी दूर जाऊँ) की प्रतियाँ और साथ ही 'एरिस्टोक्रेट' की एक बोतल लेकर उनके घर जा पहुँचा। दिन के बारह बज रहे थे। वे अपने टाइप राइटर पर कुछ टाइप कर रहे थे। मुझे देखते ही 'अरे एशो...बोशो...' कहा और फिर पूछा, ''इन्द्र ऐसेछे... पता है रणजीत वह हमारे ही देश (राजशाही) का लड़का है। बहुत व्यस्त रहता है।...''

मैंने भी कई बार देखा था कि सुभाष दा इन्द्रनाथ चौधुरी (सचिव, साहित्य अकादेमी) को 'इन्द्र' कहकर ही संबोधित करते थे।

''हाँ, आज शाम को आएँगे और कल उद्घाटन सत्र के बाद दिल्ली लौट जाएँगे। मैं उन्हें आपके बारे में बताऊँगा।''

इस बीच टाइप राइटर पर चढ़े कागज पर उन्होंने तीन-चार वाक्य और जोड़े। मैंने उन्हें बताया कि ''मेरी ननिहाल भी राजशाही ही है। भारत विभाजन के साथ मेरे सारे मामा पाकिस्तान छोड़कर भारत आ गए और आखिरकार मेरे शहर भागलपुर में ही बस गए। बस, बड़े मामा का परिवार वहीं रह गया।''

''तभी तुम्हारी बाङ्ला इतनी अच्छी है...और भागलपुर में तो काफी बंगाली लोग रहते हैं। मैं वहाँ दो बार जा चुका हूँ...'बोनोफुल' ('बनफूल' सुप्रसिद्ध बाङ्ला साहित्यकार) से वहीं मिला था...उनका गंगा किनारे वाला घर...चमत्कार!''

मैं आगे कुछ बोलूँ कि तभी एक महिला अपनी छह-सात साल की बेटी का हाथ पकड़ कर उनके पास आई और बोली, ''काकू, इसकी माड़ी (मसूड़े) में मछली का काँटा फँस गया है...मैं खाना बनाना छोड़कर भागी आई हूँ।''

सुभाष दा ने बिना किसी उद्विग्नता के सहज भाव से मिउ को पुकारा। 'मिउ' यानी उनकी बेटी। वह भी रसोई से भागती आई और सुभाष दा ने इशारे से उसे सुई लाने को कहा। मैं हैरान।

सुभाष दा ने उस लड़की को पास बुलाया और मुँह खोलने को कहा...'आऽ...हाँ'' और तीन-चार सेकेंड में काँटा बाहर निकाल दिया। मेरी हैरानी की सीमा नहीं थी।

महिला खुश हो गई। लड़की ने सुभाष दा के पाँव छुए। सुभाष दा ने उसके सिर पर हाथ रखकर कहा, ''तुम चार-पाँच महीने पहले भी आई थी न...मैंने तब क्या कहा था, सावधानी से मछली खाना...सावधान!''

दोनों के जाने के बाद मुझसे कहा, ''पता है रणजीत, मैं यहाँ आसपास के लोगों के बीच माछ काँटा डॉक्टर के नाते काफी प्रसिद्ध हूँ। कभी-कभी तो बूढ़े लोग भी मेरे पास आ धमकते हैं।...अच्छा बताओ और क्या ख़बर है। केदार जी आए थे तो मुझसे मिले थे।''

मैंने कल से होने वाली संगोष्ठी के बारे में बताया तो बोले, ''हाँ, मेरे पास भी कार्ड आया था...नामवर सिंह आ गए हैं?''

''अरे मैं कल बाहर जा रहा हूँ, वरना उनसे मिलता। वे मुझे भर्तृहरि का या किसी और कृति का अनुवाद करने पर ज़ोर दे रहे हैं...मुझे याद नहीं आ रहा...चलो छोड़ो... मछली खाआगे? मिउ भून रही है।...मिउ...'' फिर उन्होंने बेटी को पुकारा।

मैंने तब तक अपने झोले से किताबें और तेजाब (मैं शराब को इसी नाम से पुकारता हूँ) निकाल लिया था। वे इन्हें पाकर बड़े खुश हुए। मिउ के आने पर उसने पूछा, ''भात हयेछे!''

मैंने टोका, ''मैं परिषद जाकर खाना खाऊँगा...आप परेशान न हो! और भी तीन-चार लोग आने वाले हैं...बल्कि आ गए होंगे।''

''अरे मछली तो खाते जाओ...वो मारवाड़ियों की संस्था है...वहाँ मछली कहाँ? वहाँ भात भी नहीं मिलता... दहीबड़ा मिलता है।''

इस बीच एक तश्तरी में दो पीस मछली लेकर मिउ आई और उसके साथ दो बिल्लियाँ भी आईं और सुभाष दा के पैरों के पास बैठ गईं। मैं पहले भी यह दृश्य देख चुका था। जानता था कि उनके पास कभी दो दर्जन बिल्लियाँ थीं।

मैंने मछली खाना शुरू किया...एक अलग ही स्वाद था। इसका।

''कौन-सी मछली है...बता सकते हो?''

''कातला''

''अरे वाह...एक महीने बाद बड़े साइज़ वाली आने लगेगी।''

उस दिन मछली से शुरू हुआ मत्स्य पुराण...काँटे पर जाकर खत्म हुआ।

किसी एक अन्य साहित्यिक आयोजन में भाग लेने या बैठक में सम्मिलित होने सुभाष मुखोपाध्याय दिल्ली आए थे। वे राष्ट्रीय पुस्तक न्यास (एन.बी.टी.) के ग्रीन पार्क स्थित कार्यालय के समीप एक होटल में ठहरे थे। मैं उनसे पहले भी उस होटल में मिल चुका था। मैंने उनसे मिलने का समय माँगा तो उन्होंने शाम चार बजे मिलने को कहा। मैं अकादेमी से निकल कर तय समय पर पहुँच गया। उनके कमरे का दरवाजा खुला था। और वह मेरे आने की राह देख रहे थे। वह अपने बिस्तर पर बैठे रूमाल के कोने से होठों से गीला कर चश्मे का शीशा साफ़ कर रहे थे। मुझे देखते ही उन्होंने चाय भेजने के लिए नीचे फोन किया।

सुभाष दा थोड़े अन्यमनस्क से दीखे। थोड़ी देर बाद मुझसे पूछा- ''वापस अकादेमी जाओगे या घर!'' मैंने बताया - ''घर।''

वे थोड़े आश्वस्त हुए। इस बीच बेयरा चाय-बिस्किट रख गया। चाय पीते हुए घर-परिवार के बारे में भी वे कुछ-कुछ पूछते रहे। यह भी बाङ्ला अखबार देखते हो न! मैंने बताया - ''अकादेमी में एक दिन बाद 'आनंद बाजार' आता है, कभी-कभी देख लेता हूँ। हाँ 'देश' पत्रिका का ग्राहक हूँ।''

चाय पीने के बाद उन्होंने पास रखे बैग से रुई निकाला और कहा - ''मेरा एक काम कर दो! मेरी पीठ में एक फोड़ा निकला है...और वह पक गया है। तुम उसे दबा दो ताकि पीब निकल जाए।...पहले अपना हाथ साफ कर लो!''

मैं साबुन से हाथ धोकर आया तो वे अपना बनियान सिर तक उठाकर, बिस्तर के एक किनारे बैठे थे। मैंने देखा उनकी पीठ की बाईं और ललछौंहा रंग लिए एक बड़ा-सा फोड़ा टहक रहा है। मैं बुरी तरह सहम गया। मैंने डरते-डरते फोड़े के ठीक अगल-बगल अपनी उँगलियों से उसे दबावा शुरू किया। लेकिन फोड़ा शायद पूरा पका नहीं था। कोमल हृदय कवि की त्वचा इतनी सख्त होगी, मुझे इसका आभास नहीं था। चूंकि उनका सिर बनियान से ढँका था, इसलिए मैं उनकी प्रतिक्रिया से अनजान था। मेरे खयाल में वह प्रसंग घूम रहा था जब बंगाल के तेभागा आंदोलन में, बक्सा नामक स्थान पर पकड़े जाने पर युवा सुभाष की नंगी पीठ पर ब्रिटिश पुलिस सैनिकों ने चाबुक बरसाए थे।

'क्या हुआ?....' थोड़ा और ज़ोर लगाओ...' बनियान से आवाज़ आई। लेकिन काफ़ी ज़ोर लगाने के बावजूद फोड़ा टस-से-मस नहीं हुआ। यहाँ तक कि मेरी उँगलियाँ दुखने लगी थीं। फोड़ा मानो सुलग रहा था...अंगारे की तरह।

''क्या फोड़ा पका नहीं है?'' आवाज़ ने फिर से पूछा। मैं चुप रहा। ''ऐसा करो, मेरी शेविंग किट में ब्लेड रखा है- उससे फोड़ा चीर दो!''

मैं समझ गया, इस फोड़े की वजह से वे न तो सो पा रहे होंगे और न कुछ कर पा रहे होंगे। उन्हें कल सुबह कोलकाता भी जाना था और वहाँ शाम को फिर किसी साहित्य चर्चा में भाग लेना था।

इस डर से कि कहीं सेप्टिक न हो जाए और नई मुसीबत खड़ी हो जाए। मैंने उनसे कहा, ''ठीक है, मैं एक बार और देखता हूँ'' और दोनों अँगूठे को मन-ही-मन गरियाते हुए फोड़े के और निकट ले जाकर ज़ोर से दबाया।...और अंदर जमा मवाद एकदम से बलबलाकर निकला और नीचे बहने लगा। मैंने उसे रूई से पोछा लेकिन वह भी कम निकला। सुभाष दा ने अपना रूमाल मुझे दिया और कहा - ''जितना मवाद निकले, निकलने दो...रूमाल बाद में फेंक देना!''....

इस अभियान के बाद मैं थोड़ा खुश हुआ। सुभाष दा भी थोड़ी देर बाद उठे और हाथ-मुँह धोकर मुझसे कहा - ''चलो, थोड़ा घूम-फिर आते हैं।'' उन्होंने कार्डरॉय का फुलपैंट पहना, शर्ट डाली और चप्पल डालकर, होटल के दूसरे तल से नीचे उतरे। एकदम सहज और सामान्य। होटल का कर्मचारी कुछ पूछे, इससे पहले उन्होंने उसे बताया कि कोई आए तो उससे बैठने को कहना। रास्ते में मुझे बताया कि उन्हें सरोजिनी नगर जाकर नातनी के लिए एकाध खिलौने लेना था लेकिन वह कहीं निकल नहीं पाए थे। जब हम दोनों ग्रीन पार्क वाली मुख्य सड़क के किनारे वाली दुकानों के पास से गुजर रहे थे तो उनकी नज़र एक जूते की दुकान पर पड़ी। वे दुकान में घुसे और दुकानदार से शो विंडो में लगे जूते लाने को कहा, जो स्वेड का बना था। दालचीनी वाले रंग के जूते को के जोड़े को पाँव में डालने के बाद उन्होंने मुझसे पूछा, ''कैसा है, अच्छा है!''

मैंने कहा, ''आपके पैरों में बहुत जँच रहा है।''

बाङ्ला में हो रही हमारी बातचीत को दुकानदार ग़ौर से सुन रहा था। वह कुछ समझे, इसके पहले उन्होंने पूछा- 'कितने का है?'

'साढ़े छह सौ।'' उसने बताया।

मैं दाम कुछ कम करने के चक्कर में कुछ कहना चाहता ही था कि उन्होंने रोका और कहा, ''इसकी फिटिंग वग़ैरह ठीक-ठाक है...मुझे रंग पसंद भी है।''

उन्होंने अपनी चप्पर को पैक करने को कहा और कांधे से टंगे झोले में रख लिया। फिर नए जूते पहनकर ही थोड़ा आगे बढ़े। फिर एक दवाई की दुकान पर रुके और घाव सुखाने वाली दवाई खरीदी। साथ ही शैम्पू का शैशे भी। रास्ते में मिठाई की कोई दुकान न देखकर वह थोड़े निराश हुए और मुझसे कहा, ''तुम्हें कोई मिठाई खिलाना चाहता था।''

मैंने कहा, ''वह मैं आपके घर आकर खाउँगा।''

हम दोनों फिर होटल लौटे। उन्होंने बताया, ''चित्तरंजन पार्क से उनके कोई परिचित कार लेकर आएँगे और फिर छोड़ जाएँगे।''

मैंने केवल इतना बताया कि मैंने उनके उपन्यास अंतरीप वाह्बून सेनेर असुख का हिन्दी का अनुवाद पूरा कर लिया है और आठ-दस दिनों में प्रकाशक को सौंप दूँगा। मैंने इसका शीर्षक 'नरक गुलज़ार' रखा है।

शीर्षक सुनकर वे बहुत खुश हुए और बोले- 'चमत्कार...भारी सुंदर। मुझे! बाङ्ला में भी यही नाम रखना चाहिए था।''

मैंने उनके पाँव छुए और 'आसा छि' कहकर उनसे आज्ञा ली।

''बेश, एसो'' (ठीक, है, फिर मिलना)।

सुभाष दा केवल बाङ्ला या भारतीय कविता के ही हस्ताक्षर नहीं, विश्व कविता के एक उज्ज्वल प्रतिमान बने रहे। हालाँकि हर कवि का अपना देश काल और दर्पण होता है - लेकिन किसी भी काल दर्पण में सुभाष दा जैसे कवि की छवि कभी धुँधली नहीं दिखाई।

कोलकाता के 5बी, शरत बनर्जी रोड, जहाँ उनका आवास था, वहाँ से लेकर देश-विदेश में इस विश्वकवि की जहाँ तक ख्याति थी- उनके पाठकों और प्रशंसकों को आकस्मिक एवं गहरा आघात लगा। उनसे संबद्ध और समृद्ध मेरी अपनी भी कई स्मृतियाँ रही हैं -- जिनमें कोलकाता में उनके यहाँ और यहाँ दिल्ली में उनके साथ बिताई गई कई मुलाकातें शामिल हैं। उनके दिल्ली आने पर बिताई गई कई शामों की भी जो जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के परिसर में, विशेषकर अपराजित चट्टोपाध्याय के घर पर या वहाँ के गेस्ट हाउस में आयोजित अनौपचारिक काव्यपाठ में। उन्हें घेर कर बैठे श्रोता समूह में केदारनाथ सिंह भी होते। मैंने वहाँ भी तब उनकी कविताओं का हिन्दी अनुवाद पढ़ा था। कवि-जैसा उनका वह सहज व्यक्तित्व और भी आत्मीय प्रतीत होता था-- जब वे काव्य-पाठ करते थे और जब हमारे बीच होते थे तो हमें अपने घर के बड़े-बुजुर्ग जैसे जान पड़ते थे- एक-एक के सुख-दुःख साझीदार और मानवी सोच और सरोकार बाँटते हुए। सब कुछ जानने-समझने को तैयार - और वह भी बिना किसी उतावली, लाग-लपेट और तनाव के। जो कुछ वे जानते-सोचते थे- अपनी रचनाओं के आलोक में बताने को हमेशा तैयार रहते थे।

साधारण में असाधारण लेकिन सहज उपलब्ध और उपस्थित इस कवि की छवि समय के साथ निरंतर उज्जवल होती चली गई है क्योंकि विद्रूप एवं विषमतर होती स्थितियों में सुभाष मुखोपाध्याय की कमी अब बाङ्ला के पाठकों को कहीं अधिक खलने लगी है। एक ऐसा कवि, जिसने न केवल अपने समकालीनों और परवर्ती कवियों को प्रेरित और आंदोलित किया बल्कि जिसने नई पीढ़ी के कवियों को कवि मंच पर सम्मानित करने के लिए उनके जन्म दिन 12 फरवरी को प्रतिवर्ष 'कविता दिवस'' मनाने का प्रस्ताव भी रखा था।

अपने समस्त कवि-कर्म और साहित्य साधना के अनवरत संघर्ष-भरे पचास वर्षों की अनदेखी करता हुआ, अपनी विदा वेला के वर्षों पूर्व (1963 में ही) इस सर्वहारा कवि ने हमारे सामने अपनी जो छवि रखी थी- वह अलग होती हुई, कई अर्थों में आज भी विशिष्ट और उल्लेख्य जान पड़ती है-

''मैं नहीं चाहता -
कोई मुझे कवि कहकर पुकारे,
जीवन के अंतिम क्षणों तक
कंधे से कंधा जोड़कर,
मैं चलता रहूँ...इतना ही।
और फिर अपनी कलम
ट्रेक्टर के पास रखकर कह सकूँ:
बस भाई, अब मुझे विदा करो
और मुझे दे दो,
बस, थोड़ी-सी आग।''

गाथा सप्तशती (सतसई) या अमरूक शतक के विशिष्ट अंशों का अनुवाद करते हुए सुभाषो मुखोपाध्याय ने अपनी अक्षमता का हवाला तो दिया था लेकिन मूल पाठ के भावार्थ को बाङ्ला भाषा की संवेदना, संरचना और पदावली (शब्द विन्यास) के साथ प्रभावी ढंग से, संयोजित कर दिया। यह उनके पाठकों के लिए एक नया और सुखद अनुभव था। यही नहीं, छंद विन्यास के नाते भी उन्होंने इसे सराहा। गाथा सप्तशती से दो उदाहरण पर्याप्त होंगे, जो बाङ्ला में हैं -

सखीदेर कथा ग्राह्य ना करे/रमण करोछे जे भावे आमाय।
ताते एतो सुख भावेनि कखेनओ/आभार एखन प्राण रखा दाय।

(पद संख्या 58, द्वितीय शतक)

''सखियों की सलाह की अनसुनी कर तुमने जिस प्रकार मेरे साथ रमण किया है; इससे मुझे इतना सुख मिलेगा, यह सोचकर अपने प्राणों की रक्षा कर पाना मेरे लिए कठिन हो गया है।''

दाँत बसानो गोलाकार क्षते चक्रचक करे।
रसस्थ हये मृगनयनार गाल्ल।
उसमें सुख मुख देखे चाँद हय एक शाँखेर पात्र
भितरटा जार सिदूँरैर मत लाल।

(पद संख्या 100, तृतीय शतक)

''जहाँ (मैंने) दंतक्षत किया था, वह गोलाकार स्थल लाल हो गया है; इससे मृगनयनी के गाल रसीले हो उठे हैं; इसे देखकर चाँद मानो एक शंख प्रतीत होता है, जिसका भीतरी हिस्सा सिंदूर-जैसा लाल हो उठा।''

इसी तरह नायिका के विषादपूर्ण चेहरे को देखकर अनुवादक ने आधुनिक शब्दावली में उसे 'सर्वहारा' (आमजन, सरीखा) रखा है- जिसके चेहरे से दुःख की छाया कभी हटती नहीं। इस प्रकार लगभग डेढ़-दो हज़ार साल पहले लिखी कालजयी कृतियों का अनुवाद करते हुए, सुभाष मुखोपाध्याय ने, उन्हें समसामयिक पाठकों की सोच और समझ के अनुरूप रूपांतरित किया है।

इसी तरह 'अमरुक शतक' के 'श्री दुर्गा सहाय' के आरंभिक पद का अनुवाद उन्होंने संस्कृत और बाङ्ला दोनों के भाषा सौष्ठव को बनाए रखकर किया है- यथा,

''ज्या-बद्ध बाण टान करे धरा/हातेर पृष्ठे
सूर्य रश्मि मुख देखे नखदर्पणे जाँर,
फुल काने भेबे लुब्ध भ्रमरा/जाँर कटाक्ष,
सेई मा-दुर्गा ग्रहण करेन जेन रक्षार भार।''

इसी क्रम में बौद्ध सिदों के पदों का संग्रह 'चर्यापद' का अनुवाद आधुनिक बाङ्ला में किया। चूँकि बंगाली विद्वानों का मानना रहा है कि प्राचीन बाङ्ला भाषा का आदि रूप इन चर्या पदों में ही सुरक्षित है।

भारतीय भाषाओं की कई कृतियों का बाङ्ला में अनुवाद कर चुके सुभाष मुखोपाध्याय ने तुर्की भाषा के कवि नाजिम हिकमत की कविताओं का इतना प्रभावी अनुवाद किया कि वह उनके पाठकों का मूल बाङ्ला ही नहीं, स्वयं कवि सुभाष की ही रचना जान पड़ी। किसी विदेशी कवि को इतनी आत्मीयता से अपनी भाषा में प्रतिरूपित करने का उदाहरण विरल ही कहा जाएगा।[7] यही नहीं, अपने संघर्ष, संकल्प और रचना-स्वभाव से जोड़कर सुभाष ने नाजिम को भारतीय ही नहीं, विश्व कविता मंच पर प्रतिष्ठित किया। उनकी 'जेलख़ाने की चिट्ठी' और अन्य कविताएँ लगभग एक-जैसी मानसिकता से उपजी जान पड़ती है।

''प्रियतमा मेरी/तुम्हारी आखिरी चिट्ठी में
तुमने लिखा है/दर्द से मेरा सिर फटा जा रहा है
और मेरे दिल को कुछ सूझ नहीं रहा,
लिखा है तुमने/कि संभव है वे तुम्हें फाँसी पर चढ़ा दें
अगर मैंने तुम्हें खो दिया/तो मैं भी नहीं बचूँगा।''

सुभाष मुखोपाध्याय द्वारा वाप्त्सारोव (बुल्गारिया के राष्ट्रकवि) के अनुवाद कार्य की पृष्ठभूमि भी कम रोचक नहीं। अपनी रूस-यात्रा के दौरान वे एक दिन प्रसिद्ध रूसी विदुषी मदाम वीकोवा के आवास पर गए थे जो वहाँ प्राच्यशास्त्र विभाग में बाङ्ला भाषा में कार्य करती थीं और बुल्गारी भाषा साहित्य की अध्यापिका थीं। उनसे हुई बातचीत के दौरान जब कवि सुभाष ने निकोला वाप्तासारोव का ज़िक्र किया तो वीकोवा की आँखें खुशी से चमक उठीं और वे उत्साहपूर्वक वाप्तासारोव की कविता पुस्तक उठा लाईं। यही नहीं, उन्होंने एक-के-बाद-एक मूल बुल्गारी कविताओं का पाठ करना शुरू कर दिया। सुभाष दा के साथ वहाँ गए बोरिस, जो बाङ्ला जानता था, उसने उनका बाङ्ला भावानुवाद किया। वीकोवा के पति ने भी मूल बुल्गारी शब्दों को अंग्रेजी प्रतिशब्दों के द्वारा कविताओं को समझने में सहायता की। इन सबकी परिणति थी कि बाङ्ला में वाप्तसरोव की कविताओं का दिन आासबे (दिन आएगा) शीर्षक से आगमन हुआ। हालाँकि सुभाष दा ने अन्य स्रोतों का भी सहारा लिया था लेकिन मूलतः यह अंग्रेजी से किया गया अनुवाद था।

सुभाष दा ने 'देश' पत्रिका के एक अंक (7 नवम्बर, 1992) में लिखा था- ''देश (राजशाही, बाङ्लादेश) को खो देने के बावजूद मैंने। एक विशाल देश पाया है, जिसका भूत-भविष्य सब कुछ हमारा है। आसमुद्र हिमालय मेरे लिए उन्मुक्त द्वार है। जात से बंगाली होने पर भी मेरी जाति भारतीय है। हम अपनी भाषा में, घर-संसार चलाते हैं, हिन्दी की घाट नौका पर बैठकर हाट जाते हैं, तीर्थ यात्रा करते हैं। हमारे इस हरबोला शहर (बहुभाषी कोलकाता) के आईने में मैं समस्त भारत का चेहरा देखता हूँ।''

सुभाष मुखोपाध्याय ने अपने संघर्ष के दिनों में जिन कवियों से प्रेरणा ली थी, उनमें वाप्त्सारोव भी एक थे, जिन्होंने बुल्गारिया के फासीवादी शासन के खिलाफ़ विद्रोह किया था। अपनी बहुविध रचनाओं और कविता पाठ द्वारा उन्होंने श्रमिकों को संगठित किया था। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान पार्टी ने उन्हें पिरिन अंचल में प्रचार कार्य के लिए भेजा था। उनकी संगठन क्षमता और बढ़ते प्रभाव के कारण उन्हें पकड़कर जेल में डाल दिया गया, जहाँ उन्हें अमानवीय यातनाएँ दी गईं। लेकिन उन्होंने घुटने नहीं टेके। और मात्र तैंतीस साल की उम्र में उन्हें फाँसी पर लटका दिया गया। उनकी कविताओं का स्वर और तेवर उनकी यंत्रणाओं का ही विस्तार है।[8] कवि सुभाष का मानना है कि वहाँ शून्यता या धूसरता (नीरक्त पांडुरता) नहीं, और ना ही चीख पुकार है बल्कि संयत एवं गंभीर स्वर में यातना और प्रेम की बातें की गई हैं। सुभाष मुखोपाध्याय ने इस बुल्गारी कवि और जननेता की जीवनी से प्रभावित होकर ही अनुवाद किया था और अपनी सीमाओं को जानते हुए, यह स्वीकार भी किया था कि यदि अल्पांश में भी पाठकों तक उनकी कविताओं का मर्म पहुँचे तो उनका प्रयास सफल होगा।

भारतीय कवियों, विशेषकर पश्चिमी और लातीनी अमरीकी कविता से परिचित कवियों में, सत्तर और अस्सी के दशकों में चिली के कवि पाब्लो नेरुदा की कविताओं को पढ़ने और सराहने का अपूर्व उत्साह देखा गया था। उनकी कविताओं के अनुवाद भी कई भारतीय भाषाओं में हुए। बाङ्ला में ही उनके आठ-दस अनुवाद उपलब्ध है। सुभाषा दा ने इस मामले में पहल की थी और यह 'पाब्लो नेरुदा आरो कविता' और फिर 'पाब्लो नेरूदा कविता-गुच्छ (1973) शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इससे स्पष्ट है कि सुभाष मुखोपाध्याय ने अनुवाद कार्य को कितनी गंभीरता से लिया था और पाठकों में भी उनके अनुवादों की कितनी स्वीकार्यता थी।

कविताओं के अनुवाद कार्य में सहज और स्वाभाविक रुचि के कारण ही उन्होंने फारसी भाषा के अनन्य कवि हाफिज़ की रचनाओं को अंग्रेजी से बाङ्ला में रूपांतरित किया। इसे भाषान्तर कहना अधिक उपयुक्त होगा। दरअसल हाफिज़ को बंगाल में अत्यधिक सम्मान प्राप्त है। कारण है उनका उदात्त मानवीय स्तर, धर्मनिरपेक्ष दृष्टि और प्राणिमात्र के प्रमि प्रेम। रवीन्द्रनाथ

के पिता देवेन्द्रनाथ ठाकुर भी हाफिज की रचनाओं के प्रशंसक थे और अक्सर उनके शेर अपने लेखन एवं कथन में उद्धृत किया करते थे। कहना न होगा, सुभाषदा ने हाफिज को न केवल अनूदित किया था, बल्कि उनके मूल्यों को अपने जीवन में स्थान भी दिया था।

सुभाष दा का अनुवाद कार्य एक तरह से बाङ्ला भाषा में ऐसी कृतियों से समृद्ध करना भी रहा, जो मूल भाषा के साथ दूसरी भाषाओं में पाठकों में भी समादृत थीं। इनमें अलेक्टजेंडर सोल्ज़ेनित्सीन का लघु उपन्यास 'वन डे इन द लाइफ़ ऑव इवान देनिसोविच', अना फ्रेंकेर डायरी, चे ग्वेवेरार की डायरी', राजेनबर्गेर पत्र गुच्छ', 'राग ईगल' आदि सम्मिलित हैं। यही नहीं, उन्होंने भीष्म साहनी के बेहद चर्चित और साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत उपन्यास 'तमस' का भी बाङ्ला में अनुवाद किया है। सुभाष दा ने बताया था कि उन्होंने अधिकांश रचनाओं के अनुवाद स्वांतः सुखाय ही किए थे। लेकिन कुछेक अनुवाद प्रकाशकों और मित्रों के अनुरोध पर! और सच यह भी है कि अर्थाभाव की विवशता के नाते भी। बाङ्ला कविता में अपनी सर्जनात्मक काव्य मनीषा द्वारा एक नया आयाम जोड़ने वाले सुभाष मुखोपाध्याय (1919-2003) को जब 1987 में डेढ़लाख रूपये का कबीर सम्मान प्राप्त हुआ तो उन्होंने अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए मध्य प्रदेश सरकार, भारत भवन और विशेष तौर पर अशोक वाजपेयी के प्रति अपनी कृतज्ञता जताई थी। कहा भी था कि इस पुरस्कार राशि से उनकी गृहस्थी की आर्थिक स्थिति सुधरेगी।

इसी क्रम में निश्चय ही, सुभाष दा (जैसा कि उनके पाठक और प्रशंसक पुकारते हैं) के आग्रह या अनुदेश पर उनकी कविताओं के एक संचयन की योजना बनी और उनका अनुवाद करने का दायित्व मुझे भारत भवन, भोपाल द्वारा सौंपा गया। मैं साहित्य अकादेमी में तब संपादन (प्रकाशन) के पद पर था और बाङ्ला की कई कृतियों के अनुवाद के साथ सुभाष दा की कुछ कविताओं के अनुवाद कर चुका था। जैसी कि योजना थी, उसके अनुसार कविताओं के अनुवाद कार्य में अगर कहीं कोई समस्या हो या कठिनाई हो तो मुझे कोलकाता जाकर उनसे मिलने का प्रावधान रखा गया था ताकि संबंधित अंश पद, वाक्यांश या प्रवाद (मुहावरे या विशिष्ट निहितार्थ) को यथा संभव उपयुक्त या मूल के निकट रखा जा सके। इसके लिए अलग से राशि दिए जाने की व्यवस्था थी। इस प्रसंग में एक बार में सुभाष दा से मिलने कोलकाता गया भी था। उनकी आत्मीयता और सहज स्नेह के साथ उनकी सलाह पाकर मैं धन्य था और मेरा कार्य आसान हो गया था। इस तरह करीब साठ-पैसठ कविताओं का अनुवाद कार्य लगभग डेढ़साल में संपन्न हो पाया। मैंने इन्हें टंकित कराकर दो प्रतियों में भारत भवन को सौंप दिया। मुझे संबंधित अधिकारी ने पत्र द्वारा सूचित किया कि सामग्री मिल गई है और हम उसे आवश्यक कार्रवाई के लिए अग्रेषित कर रहे हैं।

लेकिन इस बीच चुनाव आ गया और राज्य में सत्ता परिवर्तन के साथ, भारत भवन का भी भाग्य बदल गया। इस बीच मैंने भारत भवन को दो-तीन पत्र भी लिखे। भोपाल जाकर जिन अधिकारियों से मिला, वे नए सचिव की प्रतीक्षा में थे। चार-छह महीने बाद जब नए सचिव पधारे तो उन्होंने पहले ही दिन मुझे पत्र लिखकर विलंब के लिए क्षमायाचना के साथ बताया कि समुचित कार्रवाई शीघ्र ही की जाएगी, आप आश्वस्त रहे। दिन...महीने...साल बीत गए... मगर कोई पत्र नहीं आया। यह तो सबको पता है कि सत्ता परिवर्तन के बाद सरकार और संबंधित संस्थाओं के पात्र और संवाद बदल जाते हैं-- पत्र एवं पुष्प बदल जाते हैं।...यहाँ तक कि पत्ते और गत्ते भी बदल जाते हैं और जिसका शिकार वह साहित्यिक योजना भी हुई और प्रस्तावित कविता संकलन प्रकाशित नहीं हो पाया। मुझे लगा मेरा श्रम व्यर्थ गया और मानदेय बट्टे खाते में। इसी बीच जब

रणजीत साहा

शांति निकेतन के हिन्दी भवन में 10 वर्ष तक रहे।
दिल्ली विश्वविद्यालय, साहित्य अकादेमी और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से सम्बद्ध रही तीन दर्जन पुस्तकें प्रकाशित। बाङ्ला के शीर्षस्थ लेखकों की कृतियों का अनुवद भी किया।
संप्रति : स्वतंत्र लेखक
संपर्क : एम.जी.1/26 विकासपुरी, नईदिल्ली, 110018
मो. 9811262257

1997 में भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार के लिए सुभाष मुखोपाध्याय के नाम की घोषणा हुई तो देश-विदेश में उनके असंख्य पाठक और प्रशंसक प्रसन्न थे और गौरवान्वित भी। मैं तो मानो हवा में उड़ रहा था।

इस हर्ष मिश्रित प्रसन्नता के साथ मेरे मन में साहित्य अकादेमी के तत्कालीन सचिव इन्द्रनाथ चौधुरी के प्रति विशेष कृतज्ञता का भाव भी सम्मिलित था। दरअसल पत्र-पत्रिकाओं में सुभाष दा की कविताआं के प्रकाशन और उन पर लिखे गये आलेखों के बारे में उन्हें जानकारी थी। मेरे सुभाष दा ने भी भारत भवन के अधिकारियों के रवैये के बारे में भी चौधुरी जी को अवश्य ही बताया होगा। अचानक एक दिन अकादमी में चौधुरी जी ने मुझे अपने कमरे में बुलाकर सुभाष दा की उन अनूदित कविताओं के बारे में पूछा। मैंने उन्हें बताया कि वे मेरे घर (विकासपुरी) में, दो फाइलों में सुरक्षित पड़ी हैं, उन्होंने कहा, ''आप मेरी गाड़ी लेकर जाइए और जल्दी से वह सब ले आइए।

जब मैंने फाइलें लाकर दीं तो वे आश्वस्त हुए और अनूदित कविताओं को सरसरी तौर पर देखकर कहा, ज्ञानपीठ पुरस्कार समिति वाले मूल कृति के साथ अनूदित रचनाएँ देखकर ही विचार करते हैं ताकि मूल भाषा न जाने वाले निर्णायक उनकी गुणवत्ता की जाँच-परख कर सके फिर यह भी जोड़ा... ''वैसे आप इस बारे में किसी को कुछ मत बताइयेगा।''

...और तीसरे दिन यह सुसंवाद सबको मिल गया कि सुभाष दा को भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ है। मैंने उस दिन शाम को उन्हें दो-दो बार एसटीडी किया। लेकिन बेकार; यह स्वाभाविक ही था कि वे तब अपने अकूत पाठकों और प्रशंसकों से घिरे होंगे। लेकिन यह उनकी सदाशयता ही थी कि कई अवसरों पर वे मेरी पीठ पर हाथ रखकर कहते रहे- 'एइटा तोमार जन्य हल' (यह तुम्हारे कारण हो पाया) इसके पहले भी वे जब कभी दिल्ली, विशेषकर साहित्य अकादेमी आते तो सचिव, इन्द्रनाथ चौधुरी, उन्हें अपनी कुर्सी पर बिठाकर सम्मान व्यक्त करते और सुभाष दा भी प्रसन्न भाव से चाय-कॉफी के साथ चुरुट सुलगाकर पिया करते।

कुछ दिन बाद मेरे पास भारतीय ज्ञानपीठ का प्रस्ताव आया कि मुझे सुभाष दा द्वारा चयनित उनकी बाङ्ला कविताओं का अनुवाद करना है। साथ ही, यह संकेत भी था कि वह मूल बाङ्ला के साथ प्रकाशित होगी। मेरे लिए तो यह संजीवनी की तरह थी। सुभाष दा ने कविताओं की सूची में कुछ नए शीर्षक तो जोड़े ही थे। पहले लिखी हुई कुछ कविताएँ हटा भी दी थीं। मैंने इस कार्य को प्राथमिकता देते हुए तीन-चार महीनों में पूरा किया और भारतीय ज्ञानपीठ को सौंप दिया, चार पाँच महीनों में वह 'अग्निगर्भ' शीर्षक से 1992 में प्रकाशित हुई। इसमें मैंने उन पर लिखित आलेख और उनसे हुई बातचीत को (प्रश्नोत्तर शैली में) भी संयोजित किया था। मुझे प्रसन्नता है कि इसे पाठकों ने भी बहुत सराहा। विशेष तौर पर यहाँ इस बात का उल्लेख आवश्यक है कि इन अनूदित कृति को ध्यान में रखकर भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता ने 1996 में अनुवाद के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिये मुझे पहला 'सेतुबंध'

पुरस्कार प्रदान किया था।

इसी क्रम में मैंने अकादेमी के हिन्दी सलाहकार मंडल को सुभाष दा द्वारा लिखित और अकादेमी द्वारा 1964 में पुरस्कृत कविता संकलन 'जत दुरेइ जाय' के हिन्दी अनुवाद का प्रस्ताव रखा। इसे स्वयं चौधुरी का समर्थन मिला और वर्ष 1996 में यह 'चाहे जितनी दूर जाऊँ' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। दरअसल इस कविता संग्रह का हिन्दी अनुवाद बहुत पहले हो जाना चाहिए था। जिससे सुभाष दा की कविताओं को जानने-समझने की भूमिका अधिक स्पष्ट और सुदृढ़हो पाती लेकिन भारतीय भाषाओं का दुर्भाग्य है कि किसी भी भाषा की विशिष्ट या महत्त्वपूर्ण कृतियों का परस्पर अनुवाद या तो होता ही नहीं है या फिर इतने सालों बाद होता है कि उसकी प्रासंगिकता समाप्त हो चुकी होती है। सुभाष दा इस मामले में अधिक खुशकिस्मत थे कि वे किताबों से कहीं अधिक जनकवि थे और अपने देशज मिजाज और मुहावरे के चलते उनकी कविताएँ जितनी पढ़ी जाती थीं, उससे कहीं ज्यादा सुनी और सराही जाती थीं। जनसभाओं, जुलूसों और पार्टी दफ्तरों में लोग उनकी कविताओं की आवृत्ति करते थे। जहाँ तक हिन्दी अनुवाद की बात है, किसी महत्त्वपूर्ण रचना के इस भाषा में प्रकाशित होने पर अन्य भारतीय भाषाओं, विशेषकर उर्दू, पंजाबी, मैथिली, राजस्थानी, डोगरी और यहाँ तक कि मलयाळम् (जिस भाषा में अनुवाद कर्म को बड़ा सम्मान प्राप्त है) आदि में अनूदित हो जाती है। इसका कारण यह है कि हिन्दी पूरे भारत की संपर्क भाषा होने के नाते इसे आकर भाषा 'विशाल जलक्षेत्र' (Grand ressovior) का भी सम्मान प्राप्त है।

लेकिन इस गौरवपूर्ण स्थान के बावजूद हिन्दी में अनूदित कृतियों की बिक्री बहुत कम है और अनुवादकों की स्थिति दयनीय है। सुभाष दा का ही उदाहरण लें, उनकी दो काव्य कृतियाँ - 'अग्निगर्भ' और 'चाहे जितनी दूर जाऊँ' जो क्रमशः 1992 और 1996 में हिन्दी में प्रकाशित हुईं, उनका दूसरा संस्करण क्रमशः 2007 और 2014 में हुआ। जबकि पहले प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ है और दूसरे का साहित्य अकादेमी और ये दोनों निश्चय ही अन्य पेशेवर प्रकाशक की तरह नहीं है। एक या दो संस्करण (वह भी इतने वर्षों बाद) हिन्दी पाठक वर्ग की उदासी विशेषकर कविता विधा में, बेहद अफसोसनाक है। नेशनल बुक ट्रस्ट ने भी सुभाष दा का सम्मान दिल्ली के त्रिवेणी कला संगत के खुले मंच पर आयोजित किया था। उस अवसर पर सुभाष दा के काव्यपाठ के साथ मुझे उनका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान किया था। उस अवसर पर उनकी पसंद की कुछ कविताएँ, यथा 'एक कविता के लिए' और 'लाल गुलाब के लिए' जैसी कविताओं का पाठ आमंत्रित श्रोताओं ने खूब सराहा। जिससे मैं काफी उत्साहित हुआ। उन अनूदित कविताओं की कुछ पंक्तियां यहाँ प्रस्तुत हैं :-

''खेतो की ऊबड़-खाबड़ जमीन की तरह
औंधा पड़ा है यह समय,
इस पर चलते हुए - तकलीफ़ होने पर भी
मुझे पता है कि इसके गर्भ में
डाले गए हैं बीज।
हमारे वर्तमान के समस्त अभिमान
जो निराश, आहत और अशांत हैं,
अपनी आँखों से आँसू पोछकर,
मनाएँगे- नवान्न का त्योहार।
लाल गुलाब को- अब अपनी आँखों में नहीं,
अपने सीने में सँजोकर रखना होगा
सीने में सहेजकर ही उसकी रक्षा की जा सकेगी।
मेरा प्रिय फूल है गुलाब,
अपने हृदय में साहस बटोरकर,
उस लाल गुलाब के लिए ही
ठाने हुए हैं हम अपनी लड़ाई।'' (काल मधुमास से)

दूसरी कविता श्रोताओं को सुभाष दा के व्यक्तित्व के अनुरूप ही जान पड़ी और उन्होंने इस पर खूब तालियाँ बजाई।

''सफ़ेद कागज पर बिखेरी नई थोड़ी-सी स्याही
विषय और आशय कहने को अब बचा ही क्या है
उस बूढ़े के पास!
इतने साल से लगा हुआ है
इस सूबे से उस सूबे तक आना-जाना।
इस जीवन में उस बूढ़े ने/कभी नहीं फैलाया हाथ
जो कुछ अपने आप मिल गया
जैसे-तैसे दाना दुनका/जो कुछ जुटा सका
अश्रुजल से सींच-सींच उसे, खुश हो गया।
अब इस जीवन का डर नहीं कोई उसे बूढ़े को
बस आने वाली बेला से लगता है डर
गिर चुके हैं दाँत, पड़ गई धुँधली नज़र
पहले वाली कठिन दिनचर्या, झेल नहीं पाती अब काया
स्वर्ग-नरक और पाप-पुण्य की
बातें उसको नहीं सतातीं।

एक-एक पल इस जीवन का
उत्सव उसे जान पड़ता है
जो कुछ भी वह देख रहा अब
भानुमती का खेल लगता है। (भानुमती का खेल)

अपनी ऐतिहासिक चेतना को निरंतर जीने वाले कवि सुभाष- वर्ग-संघर्ष के प्रवक्ता रहे हैं। इसलिए एक सांस्कृतिक कर्मी के रूप में भी उन्हें उन पलायनवादी कथा और गाथानायकों और तथाकथित आदर्शों का विरोध करना था- जिनमें शोषितों और आम लोगों की कोई जगह नहीं थी- इसलिए सुभाष मुखोपाध्याय ने कविताओं के साथ-साथ, समय-समय पर गद्य रचनाएँ भी लिखीं। प्रभूत अनुवाद कार्य भी किए। इन सबमें उनकी वे ही प्रतिश्रुतियाँ विद्यमान रहीं- सामाजिक नवोत्थान का स्वप्न, सांस्कृतिक विमर्श और सर्वहारा की आकांक्षाओं का सम्मान। यह सब कुछ उनकी रम्य रचना, यात्रा वृत्तांत, रिपोर्ताज, बाल-साहित्य, स्तंभ, लेखन, पत्रानुवाद आदि साहित्यिक वृत्तियों में सम्मिलित रही थीं। इन्हीं में से उनके एक चर्चित उपन्यास 'अंतरीप वा ह्यूमन सेनेर असुख' का मैंने 'नरक गुलज़ार' शीर्षक से अनुवाद (राजकमल से अप्रकाशित) किया था - जिसमें कोढ़ियों की एक बस्ती में घटित सामाजिक उथल-पुथल ही नहीं, वोट की राजनीति और नेताओं की रणनीति का हवाला है। कुष्ठ रोग से ग्रस्त एक अभिजात वर्ग का उच्च अधिकारी परिस्थितिवश कोढ़ियों की बस्ती में पहुँच जाता है और धीरे-धीरे वहाँ का सर्वेसर्वा हो जाता है। वहाँ कुछ नक्सली युवक भी आ धमकते हैं, जो समाज को अपनी शर्तों पर बदलने के आग्रही हैं। कवि सुभाष ने ऐसे दिशाहारा युवक समाज के प्रति पूरी संवेदना रखते हुए कथानक में पूरी तटस्थता बरती है ताकि पाठक सामाजिक न्याय और बदलाव की आँधी और आकांक्षा को सकारात्मक दृष्टि से देख सके। इसके पहले भी *छेले गेछे वने* कविता संकलन (1972) में कवि सुभाष इस युवा आंदोलन को वाणी दे चुके थे।

संधी के क्षण के कवि : सुभाष मुखोपाध्याय

सुनील गंगोपाध्याय

बुद्धदेव बसु ने एक बार लिखा था, ''एक ज़माने में बाङ्ला भाषा का तरुणतम कवि मैं था, अब सुभाष मुखोपाध्याय हैं।'' वही तरुणतम कवि चौरासी वर्ष 'पाँच मास पार कर चला गया। पर, वे कभी वृद्ध नहीं हुए। अंतिम दिनों में शरीर अवश्य अशक्त हो गया था, सुनने की शक्ति एकदम अंतर्धान हो गई थी, फिर भी उनके कविता-पाठ करते ही स्पष्ट रूप से दिखाई देते सिर पर रूखे-सूखे, बेतरतीब बाल, ऋजु और छरहरी देहयष्टि, सहास्य वदन एक युवा।

रवीन्द्र परवर्ती कवियों में जीवनानंद दास की प्रधानता उनकी मृत्यु के बाद स्थापित हो गई थी, उनके समकालीन कवियों में बहुत से लोग उनके भाषा-शिल्प की अनन्यता को नहीं पहचान सके थे। किन्तु सुभाष मुखोपाध्याय अपने जीवन के प्रारंभ से ही विशिष्ट हो गये थे। रवीन्द्रनाथ के प्रभाव से अलग पदक्षेप करने लगा एक तरुण, वह था ''पदातिक'' का कवि। वह 1940 का वर्ष था, उसकी उम्र भी मात्र इक्कीस वर्ष। यह समय बाङ्ला कविता का एक संधि-क्षण था, एवं उसी समय जैसे निश्चित हो गया कि सुभाष मुखोपाध्याय परवर्ती कई दशकों तक बाङ्ला कविता का नेतृत्व करेंगे।

वामपंथी राजनीति से जुड़कर वे गाँव-देहात में घूमते हैं, श्रमिक-कृषकों के साथ घुलते-मिलते हैं, कच्चे खोह जैसे घरों में रात्रि यापन करते हैं, जनसाधारण की बोलचाल की भाषा को सीधे-सीधे कविता में ले आते हैं, ये सब बातें तो सभी जानी हुई है, फिर भी यह बात भी सही है कि सुभाष मुखोपाध्याय की कविता के उपादान पूरी तरह नगरीय हैं। वक्र, तीक्ष्ण वाक-भंगी, छंदों का असाधारण प्रयोग जीवनानंद ने किंचित ग्राम्य सरलता के भाव में प्रस्फुटन के लिए कहीं-कहीं छंदों को ढीला छोड़ दिया है, क्रियापदों में साधु और बोलचाल के शब्दों को मिला दिया है। किन्तु सुभाष मुखोपाध्याय सदा सप्रतिभ बने रहते हैं जीवनानंद से एकदम भिन्न होने के लिए संभवतः यह प्रयास है। उन्होंने कई समसामयिक विषयों को लेकर कविता लिखी है, जैसे मीटिंग, जुलूस, आंदोलन किन्तु टुकड़े-टुकड़े वर्णना और चकित करने वाली उक्तियों के कारण वह सचमुच में प्रकृत कविता हो उठती है, अत्यंत मामूली कथ्य को सजाकर अपूर्व काव्य रस की सृष्टि कर देने का जादू तो उनके करायत्त था। उन सब कविताओं के कुछ-कुछ कहानी का इशारा है, दो एक चरित्रों के रेखाचित्र भी हैं। एक दौर ऐसा था जब विशुद्धतावादी लोग कविता में ऐसी कहानियों का समावेश पसंद नहीं करते थे, किन्तु सुभाष मुखोपाध्याय ने उनकी कभी परवाह नहीं की। वे तो मनुष्य की कथा लिखना चाहते थे, यहाँ तक कि प्रकृति भी उनकी दुर्बोधता पैदा हो गई थी, सुभाष मुखोपाध्याय ने उसे भी छिन्न-विछिन्न कर दिया था। पाँचवे दशक तक बाङ्ला कविता दो भागों में विभक्त थी- कविता एवं आधुनिक कविता। रवीन्द्रनाथ और उनके अनुसरणकर्ताओं तक तो थी सिर्फ कविता की सीमारेखा और इसके परवर्ती कवि जो कुछ लिखते थे, वह हुई आधुनिक कविता। ''आधुनिक'' शब्द का प्रयोग निन्दार्थ में किया जाता था। पाठक वर्ग ऐसा ही मानता था एवं इस धारणा की सृष्टि प्राध्यापक-समालोचकों ने कर दी थी कि आधुनिक कविता का अर्थ ही है दुर्बोध्य, अपाठ्य कविता/असल में कुछ कवियों ने निर्वैक्तिकता और व्यक्तिगत बिम्ब विधान के नाम पर अतिशय दुर्बोध्यता की उपासना शुरू कर दी थी, यह बात भी अवश्य स्वीकार करनी चाहिए। सुभाष मुखोपाध्याय प्रबल रूप से आधुनिक होते हुए भी कभी भी अस्पष्ट और धुँधले अर्थ वाली पंक्ति-रचना के पक्षपाती नहीं थे। उनकी कविता तो सदा स्वच्छ और पारदर्शी हुआ करती थी।

उनकी कई पंक्तियाँ कहावत के रूप में प्रसिद्ध हो गई हैं। बहुतों को तो यही पता नहीं है कि ये किसकी रची हुई हैं अथवा किस कविता का अंश है, फिर भी, समाचार पत्रों अथवा सभा-समितियों में इनका प्रयोग होता है। *''फूल फूटूक या फूटूक, आज वसंते''*- फूल खिलें अथवा न खिलें आज तो वसंत है अथवा *''फूलगुलि सरिये नाओ, आमार लागछे''* - फूलों को हटा लो मुझे चुभ रहे हैं।

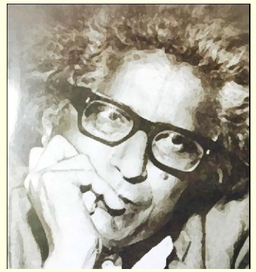

> अनेक कवियों के जीवन में बीच-बीच में ऐसा समय आता है, जब एकाएक कविता लिखना बंद हो जाता है। किसी भी शब्द का प्रयोग मन के मुताबिक नहीं होता, यहाँ तक लगने लगता है कि कविता उस कवि को चिरकाल के लिए जैसे छोड़ कर चली गई है। महाजनों ने परामर्श दिया है कि ऐसा समय आने पर कवियों को कुछ अनुवाद चर्चा करना अथवा ग्रंथ-समालोचना करना चाहिए, अर्थात ये सब काम गद्य में होने पर भी भाषा-चर्चा को अव्याहत बनाए रखना जरूरी है। सुभाष मुखोपाध्याय ने भी जब कविता कम लिखी, तब उन्होंने अनुवाद में हाथ लगाया। हो सकता है इससे उनकी जीविकोपार्जन की यत्किंचित व्यवस्था हो गई हो, उन्हें कुछ सुविधा मिल गई हो। नाजिम हिकमत नाम के किसी कवि के अस्तित्व का पता इस देश के अनेक लोगों को नहीं था, वह कवि सुभाष मुखोपाध्याय के अनुवाद के कारण लोकप्रिय हो गया। ''रोजेनवर्ग की पत्रावली'' भी उनका एक उल्लेखनीय अनुवाद ग्रंथ है।

किंवा *''प्रिय, फूल खेलवार दिन नय अद्य, ध्वंसेर मुखोमुखि आमरा''* - प्रिय, पुष्प-क्रीड़ा के दिन नहीं है अब, आज तो हम ध्वंस के सामने हैं, किंवा *''फूलके दिये मानुष बड वेशि मिथ्या बोलाय''*- मनुष्य के फूलों के द्वारा बहुत अधिक झूठ बुलवाता है, इत्यादि (इन पंक्तियों के उदारहण देते समय खयाल आया, वे कुसुमविलासी नहीं थे। इसके बावजूद उनकी ऐसी अनेक पंक्तियाँ प्रसिद्ध हैं, जिनमें फूलों का उल्लेख किया गया है)।

सुभाष मुखोपाध्याय ने अधिक उम्र में उपन्यास लिखने की शुरूआत की थी। संभवतः नक्सल-पक्षियों के दौर में *''छेले-गेछे वने''* काव्य-संकलन के प्रकाशन के बाद ही हमें उनका हांग्रास उपन्यास मिलता है। उस उपन्यास का प्रथम पाठ का विस्मय और रोमांच आज भी मुझे याद है। उसी समय समझ गया था, समस्त रसों में और साहित्य की भाषा में, जिस उपादान की अवस्थिति होना अनिवार्य है और जिसे 'ह्यूमर'' कहते हैं, बाङ्ला फ्रतिशब्द के द्वारा जिसे समझाया नहीं जा सकता है, वह तत्व सुभाष मुखोपाध्याय की कविता में जिस तरह विद्यमान है, वैसे ही उनकी जेलगाथा विद्यमान है। कई लेखकों की कोई-कोई महत्त्वाकांक्षी रचना इस तरह दाँत-से-दाँत भींच कर लिखी जाती है, वह इतनी गंभीर होती है कि उसमें ह्यूमर लेशमात्र भी नहीं होता है, इसलिए उन्हें पढ़ते हुए थकान आ जाती है। कई लोगों की ऐसी धारणा है कि जो रचना सहजता से तड़ातड़ पढ़ी जा सकती है, वह उच्च स्तर की रचना नहीं होती है, इसलिए अगर रचना उच्च स्तर की बनानी हो तो उसकी वाक्य-संरचना अकारण ही जटिल बनानी होगी। सुभाष मुखोपाध्याय ने इन सब धारणाओं को तहस-नहस कर दिया है। अंतरीप अथवा हानसेन असुख उपन्यास के रूप में विशेष उल्लेखनीय है।

बाङ्ला भाषा के सांप्रतिक काल में यही एकमात्र कवि है, जिसने जीविका के

लिए कभी भी नौकरी नहीं खोजी। सिर्फ बाङ्ला में लिखकर और वह भी कविता, जीवन-यापन की व्यवस्था करना बहुतों के लिये अकल्पनीय होगा। तीन कन्याओं और दो दर्जन बिल्लियों के साथ उनका परिवार कोई छोटा नहीं था। जीवन के प्रारंभ में कम्युनिस्ट पार्टी के मुखपत्र स्वाधीनता में पत्रकारिता करते हुए गली-गली में अखबार बेचने जैसा काम भी उन्होंने किया है। बाद में अनेक पत्र-पत्रिकाओं में असंख्य रचनाएँ लिखी हैं, उनमें से प्रत्येक कविता अत्यंत सरस और तीखी अत्यंत तीखे बयान से पूर्ण कविता लिखी थी, बाद में लगता है उस वक्तव्य के संबंध में उनका मत बदल गया था।

अनेक कवियों के जीवन में बीच-बीच में ऐसा समय आता है, जब एकाएक कविता लिखना बंद हो जाता है। किसी भी शब्द का प्रयोग मन के मुताबिक नहीं होता, यहाँ तक लगने लगता है कि कविता उस कवि को चिरकाल के लिए जैसे छोड़ कर चली गई है। महाजनों ने परामर्श दिया है कि ऐसा समय आने पर कवियों को कुछ अनुवाद चर्चा करना अथवा ग्रंथ-समालोचना करना चाहिए, अर्थात ये सब काम गद्य में होने पर भी भाषा-चर्चा को अव्याहत बनाए रखना जरूरी है। सुभाष मुखोपाध्याय ने भी जब कविता कम लिखी, तब उन्होंने अनुवाद में हाथ लगाया। हो सकता है इससे उनकी जीविकोपार्जन की यत्किंचित व्यवस्था हो गई हो, उन्हें कुछ सुविधा मिल गई हो। नाजिम हिकमत नाम के किसी कवि के अस्तित्व का पता इस देश के अनेक लोगों को नहीं था, वह कवि सुभाष मुखोपाध्याय के अनुवाद के कारण लोकप्रिय हो गया। ''रोजेनवर्ग की पत्रावली'' भी उनका एक उल्लेखनीय अनुवाद ग्रंथ है।

बंगाल और पूरे भारतवर्ष में उनकी ख्याति फैल गई थी। उन्हें सभी श्रेणी के ''अखिल भारतीय पुरस्कार'' मिले थे, वे तो उनकी प्रतिभा की स्वीकृति मात्र थे। अफ्रो-एशियन राइटर्स कान्फ्रेंस समेत अनेक अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य-सम्मेलनों में योग देने के बाद भी बाङ्ला भाषा उनके श्वास-प्रश्वास में थी। सांप्रतिक समय में इस बंगाल में बाङ्ला भाषा के पिछड़ जाने से वे अत्यंत व्यथा का अनुभव करते थे, एवं बाङ्ला भाषा के पूर्व गौरव के पुनरुद्धार के लिए जो सब आंदोलन चलाए गए वे उन सबके प्रबल समर्थक थे और दुर्बल शरीर को लेकर भी हर सभा में योग देते थे।

मेरे साथ तो सुभाष मुखोपाध्याय के साहचर्य और अड्डेबाजी की अनेक स्मृतियाँ हैं। बंगाल के बाहर की अनेक काव्य सभाओं में उनके साथ भाग लेने गया हूँ। उम्र में वे मुझसे बहुत बड़े थे, फिर भी वे उम्र के अंतर का पता नहीं चलने देते थे। हलदिया, दुर्गापुर अथवा दिल्ली में सारी रात खान-पान के साथ गपशप, तर्क-वितर्क अथवा गानों के बाद आश्चर्य से देखता था कि दूसरे दिन बड़े तड़के से सबसे पहले उठकर, दाढ़ी बनाकर एकदम फिट-फाट हैं। उन सब स्मृतियों की चर्चा फिर कभी करूँगा।

जीवन के अनेक वर्षों तक वामपंथी राजनीति के साथ संबद्ध रहे, जेल काटी, उसके लिए कई त्याग किए, उसके बाद अंतिम दौर में वामपंथ को एकदम छोड़कर ठीक उसकी विपरीत दिशा की राजनीति के संसर्ग में वे क्यों आ गए थे, किसी नाराजगी के कारण अथवा स्वप्न भंग होने से अथवा आस्था बदल जाने के कारण, यह मैं नहीं जानता। उनके इस विचार-परिवर्तन से मैं विस्मत और दुखित अवश्य हुआ था। उनके राजनीति का एकदम परित्याग कर देने पर भी कहने को कुछ रह नहीं गया था।

जो भी हो, इस विषय में मैं और कुछ चर्चा नहीं करना चाहता। फिर भी, यह बात तो जोर देकर कहनी होगी, इस दल-बदल से सुभाष मुखोपाध्याय की कविता और गद्य-रचनाओं की सार्थकता और उनके अविस्मरणीय बने रहने की योग्यता किसी भी तरह क्षीण नहीं होती है। एक सचमुच में बड़े कवि और मधुर स्वभाव के मनुष्य को हम लोगों ने खो दिया।

(देश, 2 जुलाई 2003 से साभार)

सुभाषित रवीन्द्र

अशोक वाजपेयी

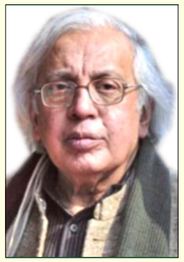

वे काफ़ी बूढ़े और अशक्त हो गए हैं: उन्हें ठीक से सुनाई नहीं पड़ता। चलने में सहारे की ज़रूरत पड़ती है। लेकिन बांग्ला कवि सुभाष मुखोपाध्याय की जिजीविषा अथक और अदम्य है। 12-13 मार्च 1998 को उन्होंने साहित्य अकादेमी के तत्वावधान में इस वर्ष के 'संवत्सर व्याख्यान' दिए जो रवीन्द्रनाथ पर एकाग्र थे। सुभाष दा हालाँकि अच्छी-खासी अंग्रेजी बोल लेते हैं, वे अपने अंग्रेजी अज्ञान का उल्लेख करना कभी नहीं भूलते और यह ज़रूर कहते हैं कि वे अंग्रेजी में बोलकर कुछ अस्वाभाविक कर रहे हैं। इस तरह की विनम्रता उनका सहजशील है तो इसका विनय-भरा पर असंदिग्ध इसरार भी कि वे एक बांग्ला लेखक हैं जिसका अस्तित्व बांग्ला से परिभाषित-व्यक्त होता है, अंग्रेजी के ज्ञान-अज्ञान से नहीं।

अपने दो व्याख्यानों में, जिन्हें सुनने दुर्भाग्य से उतने लोग नहीं आए जितने कि आने चाहिए, सुभाष दा ने एक कवि के अपने पहले के एक महाकवि के साथ कठिन सम्बन्ध को अनेक स्तरों पर उकेरा। उनके बाद के किसी भी कवि की राह रवीन्द्रनाथ को बरका या नज़रअन्दाज कर नहीं बन सकती थी: क्योंकि वे थे और उन्हीं में से होकर राह निकलती थी। उन्नीस वर्ष के एक तरुण कवि ने उस समय तक महाकवि हो चुके रवीन्द्रनाथ को एक पद्य-पत्र लिखा था। उनके सचिव ने उसकी पावती सुभाष दा को भेजी थी। लेकिन उन्हें यह पता नहीं चला था कि उनकी प्रतिक्रिया क्या हुई। बरसों बाद जब वे स्वयं एक मूर्धन्य कवि के रूप में बहुमान्य हो चुके थे और रवीन्द्रनाथ दिवंगत, सुभाष दा को शान्ति निकेतन जाने पर एक बूढ़े हो चुके सचिव ने बताया था कि रवीन्द्रनाथ सुभाष दा के पद्य-पत्र से उसके विनोदभाव से पहले तो प्रसन्न हुए लेकिन जब पत्र का स्वर बदलकर कुछ आलोचनात्मक हुआ तो उनके चेहरे का भाव कुछ कठोर पड़ गया था। सुभाष दा ने लगभग विगलित भाव से कहा कि जीवन में अपनी कविता पर इससे अधिक मर्मस्पर्शी प्रतिक्रिया उन्हें कभी नहीं मिली।

पर इस प्रतिक्रिया के होने और सुभाष दा तक उनके पहुँचने में कई दशकों का अन्तराल रहा। रवीन्द्रनाथ के आभिजात्य और परिष्कार का बांग्ला लोकजीवन और व्यवहार से कितना गहरा और अटूट सम्बन्ध था इसे भी सुभाष दा ने खूब उजागर किया। संसार की अपनी यात्राओं के दौरान कैसे रवीन्द्रनाथ एक अधिक आत्मविश्वस्त और स्वाभिमानी भारतीय बनते गए इसका चित्रण भी सुभाष दा ने किया। 'सारी कठिनाई और शारीरिक कमजोर के बावजूद बूढ़े सुभाष दा प्रसन्न थे क्योंकि वे अनेक लेखक बन्धुओं के बीच थे और अपने पूर्वज महाकवि को उनके बीच पुनरुपस्थित कर रहे थे। बहुतों को नहीं मालूम कि सिर्फ साहित्य से ही अपनी जीविका चलाने वाले सुभाष दा की सामाजिक कार्यों में कितनी सघन हिस्सेदारी है। मुझे याद है कि जब भोपाल में सुभाष दा को कविता के लिए डेढ़लखटकिया रूपए का कबीर सम्मान मिला था तो उन्होंने बताया था कि वे उस रूपए से अपनी पत्नी द्वारा चलाए जा रहे एक स्कूल के बच्चों के लिए मैटाडोर खरीदने जा रहे हैं क्योंकि गरीब बच्चों को दूर से आने में बड़ी झंझट होती है।

('कभी कभार' से)

साक्षात्कार

मैं कविता को प्राणशक्ति के रूप में देखता हूँ...

सुभाष मुखोपाध्याय से रणजीत साहा की लम्बी बातचीत

भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किये जाने की घोषणा के बाद जब सुभाष मुखोपाध्याय दिल्ली पधारे तो उनसे डॉ.रणजीत साहा ने 21 से 23 अगस्त, 1992 के दौरान बातचीत की और इस रूप में प्रस्तुत किया।

रणतीत साहा : आपको कब ऐसा लगा कि आप कवि हो गये हैं?

सुभाष मुखोपाध्याय : कवि के रूप में मेरी प्रसिद्धि तभी हो गयी थी जब मैं केवल चौदह साल का था। नहीं, मैं सचमुच 'एक्साइटेड' हो जाया करता था जब कोई अपरिचित मुझे सड़क चलते रुककर देखने लगता था। दरअसल है तो यह बड़ी छोटी-सी बात...लेकिन एक गरीब परिवार से संबंधित होने के कारण एक छोटी-सी खुशी भी बड़ी जान पड़ती थी। परिवार उन दिनों लेक मार्केट, कोलकाता के पास रहता था। हमारे मोहल्ले के पास ही एक धोबी-घाट था। अपने स्कूल की दीवार-पत्रिका के लिए कविताएँ लिखता रहता था। खासकर गर्मी की छुट्टियों में। एक बार मेरे किसी शिक्षक ने मेरी तारीफ कर दी। बस क्या था, मैं बैठे-बिठाए एक कवि बन गया। कविताओं में शुरू से ही मेरी रुचि थी। वर्ड्सवर्थ की 'वी आर सेवन' कविता से मैं बहुत प्रभावित था और कक्षा में अकसर इसका पाठ भी किया करता था। वैसे मैं बहुत पढ़ने वाला विद्यार्थी कभी नहीं रहा...लेकिन मेरी पसन्द कुछ अलग किस्म की और आम लोगों से हटकर हुआ करती थी। वह क्या थी, यह मैं समझ नहीं पाता था। और इस मामले में मेरी बड़ी बहन ही मेरी प्रचारमन्त्री थी, जो धोबी-घाट के इर्द-गिर्द इस कवि भाई का गुणगान किया करती थी। तो इस तरह धीरे-धीरे मुझमें थोड़ा आत्म-विश्वास पैदा होने लगा था।

लेकिन आपके पहले काव्य-संकलन 'पदातिक' पर जब आपको रवीन्द्रनाथ की प्रतिक्रिया प्राप्त हुई तो आपको कैसा लगा?

रवीन्द्रनाथ की प्रतिक्रिया के बारे में मुझे बहुत बाद में पता चला। 'पदातिक' की पहली कविता 'मई दिवस' के स्वर और तेवर से वह खुश हुए हैं- ऐसा मुझे उनके सचिव और बाङ्ला के कवि अमिय चक्रवर्ती के पत्र से पता चला।
बाद में, उन्होंने अपनी शुभकामना भी व्यक्त की थी। चूँकि रवीन्द्रनाथ उन दिनों बहुत अस्वस्थ चल रहे थे इसलिए वह कुछ अधिक लिखने-पढ़ने की स्थिति में नहीं थे। बाद में शायद 1955 में शान्ति निकेतन में किसी सभा में वहीं के पुराने सहकर्मी सुधाकान्त राय चौधुरी ने भी मुझे बताया कि रवीन्द्रनाथ ने मेरी कविताओं की तारीफ यह कहकर की थी कि इस लड़के में मुझे संभावना दिखती है।

आपने रवीन्द्रनाथ से कभी मिलने की कोशिश की ?

नहीं। लेकिन मैंने उन्हें कोलकाता की किसी सभा में भाषण देते और कविता पढ़ते सुना था। मेरी उम्र तब सत्रह-अठारह साल की रही होगी। मैं अपने मामा के साथ, जो गाँव के शिक्षक थे, वहाँ पहुँचा। बुद्धदेव बसु भी वहीं दिखे। हाल खचाखच भरा था। तालियाँ भी खूब बजीं। लेकिन पता नहीं क्यों, मैं उनकी बातों या कविता से बहुत आश्वस्त नहीं हुआ। कहना चाहिए, बहुत संतोष नहीं हुआ। मेरे मन में क्या आया कि मैंने एक लम्बी गद्य-कविता लिखी, जिसमें उनके प्रति पूरा सम्मान प्रदर्शित करते हुए मैंने उनसे यह पूछने का दुस्साहस किया था कि क्या आप कविता से अपने समय और समाज को बदल सकते हैं? अगर नहीं तो कविता की क्या जरूरत है? मैंने शायद युवोचित उत्साह में यह भी लिख दिया था कि या तो आप अपनी कविताओं को वापस ले लीजिए या इससे दुनिया को बदल डालिए। अब उस समय कविता के बारे में उन्होंने अपने मित्रों एवं सहयोगियों से चर्चा की थी और कहा था - सुभाष मुखोपाध्याय की कविता का अन्त तो बड़े गंभीर प्रश्न से हुआ है। उसके प्रश्न का उत्तर इतना ही है कि अब मैं काफ़ी वृद्ध हो गया हूँ। भई, इस लड़के को मेरा आशीर्वाद भेज दो। अमिय चक्रवर्ती ने इस आशय का एक पत्र भी भेजा था, लेकिन अपनी लापरवाही में मैंने उसे कहीं खो दिया। दरअसल मैं अपनी चीजों को, अभी हाल तक बहुत सहेजकर रख नहीं पाया।

एक अच्छी कविता के लिए आप उसमें किन-किन गुणों का होना अनिवार्य मानते हैं?

इसका सही जवाब कोई कवि नहीं, कोई सार्थक कविता ही दे सकती है। एक सार्थक कविता और कहीं मुद्रित अथवा प्रकाशित कविता का अन्तर सबको पता है। दूसरी ओर मुद्रित हो जाना ही इसकी कविता-सत्ता की समाप्ति नहीं है, वह अपने शब्दों से समय और समाज में गूँज और अनुगूँज पैदा कर फिर किसी दूसरे समय और समाज की आकांक्षा और संभावना के लिए बीज रूप में सुरक्षित रहती है। दुर्भाग्य से, ऐसे कवि और कविता की संख्या बहुत कम है। मैं चूँकि बहुत पढ़त पढ़नहीं पाता, इसलिए अभी तो यही कह सकता हूँ।

आपने अपनी कविताओं में 'आग' के अभिप्राय को बार-बार दोहराया है। यहाँ तक कि पानी में आग रोपने की बात करते रहे हैं - क्या यह सब अनायास हुआ है?

भई, दुनिया के और सारे काम अनायास हो सकते हैं - कविता अनायास नहीं लिखी जा सकती। यह ठीक है कि मैं अपनी कविताओं के प्रति कोई अतिरिक्त ममत्व नहीं रखता। लेकिन वे मुझे इसलिए प्रिय हैं कि मुझे इन कविताओं ने सिर्फ रोशनी ही नहीं दी या दिखायी है- आँच भी दी है और अनुभव की उष्मा भी प्रदान की है। मैं स्पष्ट कर दूँ कि मैं जब कविता की बात कर रहा होता हूँ तो मेरा मतलब केवल किताबी कविताओं से नहीं होता, मैं कविता को प्राण शक्ति के रूप में देखता हूँ।

लेकिन जहाँ तक आपके प्रशंसकों या श्रोताओं की बात है आपकी असाधारण लोकप्रियता को तो आपके आलोचक भी स्वीकार करते हैं।

नहीं। यह मेरी सफलता नहीं है- मेरी उपस्थिति का सामना भर है। यह ठीक है कि मैंने काफी कुछ लिखा है लेकिन वह सब-का-सब सार्थक और सन्तोषप्रद है, मैं नहीं मानता। काव्य-गोष्ठियों या साहित्य-सभाओं में मेरी कविताओं को लोग अब भी सुनना पसन्द करते हैं - इससे प्रसन्नता होती है।

अफ्रो-एशियन लेखक संघ के महासचिव अलेक्स लेगुमा के साथ सुभाष मुखोपाध्याय (जापान 1981)

ऐसा कोई अवसर जब आपको अपने काव्य-पाठ से भरपूर सन्तोष मिला हो ?

अनौपचारिक गोष्ठियों में तो मैं, चाहे-अनचाहे कविताओं का पाठ करता ही हूँ लेकिन बड़ी गोष्ठियों या सम्मेलनों में इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि लोगों का रुझान चाहे जैसा हो वह कवि की कविता को मनोयोग से सुने और पूरी की पूरी सुने। ऐसा सुखद अनुभव मुझे ईस्टर्न इंडिया कल्चरल फेस्टिवल के दौरान हुआ था। कोलकाता के ही शहीद मैदान में उस रात खूब तेज़ बारिश हुई थी और मेरी कविता पढ़ने की बारी थी। रात के साढ़े नौ बज रहे थे। मैंने कविता पढ़ना शुरू किया। कविता अपेक्षाकृत लम्बी थी। लोगों ने सुना- पंडाल में चारों ओर अजीब सी चुप्पी छा गयी! सारा श्रोता-समाज स्तब्ध था और कविता खत्म होने के साथ ही इतनी तालियाँ बजीं कि मैं हैरान रह गया और फिर मैं पता नहीं कब तक कविताएँ पढ़ता रहा। वैसे मेरी कविताओं की आवृत्ति कुछ दूसरे कवि भी करते हैं और मुझसे अच्छा करते हैं। मैं तो बस पढ़देता हूँ।

नये लेखकों या कवियों में आप किसके लेखन में संभावना देख रहे हैं?

इस सवाल का जवाब मैं अकसर टाल जाता हूँ क्योंकि मैं साहित्य का भक्त कभी नहीं रहा। देशी हो या विदेशी, मैं देखता यह हूँ कि यह मेरे काम का है या नहीं। कुछ की कविताएँ अच्छी लगती हैं - कुछ की जटिल। खुद अपना ही लिखा बहुत आश्वस्त नहीं करता, लेकिन जब कोई रचना छप जाए तो कवि का नाम तो उसके साथ रहेगा ही। यह ठीक है कि मैं किसी चर्चित कवि या कृति के पीछे नहीं भागता।

ऐसा कोई संकलन जिसका आप विशेष उल्लेख करना चाहेंगे ?

नहीं, ऐसा कोई संकलन नहीं। वैसे 'पदातिक' बहुत चर्चित हुई। मैं खुद बहुत हैरान हुआ था। 'जत दुरेइ जाय' को साहित्य अकादेमी ने पुरस्कार देकर चर्चित बना दिया। 'काल मधुमास' और 'धर्मेर कल' की कुछ कविताओं को बार-बार उद्धृत किया जाता है। अनुवाद भी हुए, तो अच्छा लगना स्वाभाविक है। कुछ कालजयी कृतियों के अनुवाद मैंने भी किये- बाङ्ला और अंग्रेजी से। क्लासिकल कृतियों के अनुवाद तो खूब होने चाहिये।

लेकिन आपने नाजिम हिमकत, चे ग्वेवेरा, रोजेन बर्गर, जार्ज सैफरिज, पाब्लो नेरूदा और हाफिज इन सबको बाङ्ला में अनूदित किया- इसके पीछे कौन-सी प्रेरणा रही ?

इन कविताओं को पढ़ने की चाह तो थी ही। पढ़ने के बाद का आनंद ही मुझे अनुवाद के लिए प्रेरित करता रहा। मैंने किसी खास विचारधारा के अन्तर्गत या पाठक या प्रकाशक की माँग के अनुरूप इनका अनुवाद नहीं किया। नाजिम हिकमत की कुछ कविओं के अनुवाद के संकलन भी काफी लोकप्रिय हुए। 'जेलखाने की चिट्ठी' और 'भूख हड़ताल के पाँचवें दिन' जैसी कविताओं को तो मूल जैसा समझकर ही पाठकों और श्रोताओं ने सराहा। मुझे तब बार-बार यह बताना पड़ता था कि ये अनुवाद हैं। और ऐसे क्लासिकल तो दोबारा-तिबारा अनूदित होने चाहिए।

लेकिन आप तो यह भी मानते रहे हैं कि अनुवाद में एक तरह की पराधीनता या परनिर्भरता की गुंजाइश रहती है।

हाँ, इस निर्भरता के बाद जब अनुवाद कार्य संपन्न हो जाता है तो एक तरह की मुक्तिभरी प्रसन्नता भी मिलती है। दूसरे के भाव आपकी भाषा और साहित्य को ही नहीं, आपकी समझ को भी समृद्ध करते हैं। एक रचनाकार को तब और अधिक प्रसन्नता तब होती है कि वह जो कुछ लिख सकता था- वह दूसरे ने पहले से ही लिख रखा है। पाब्लो नेरुदा, चे ग्वेवेरा या नाज़िम हिकमत ने जो कुछ लिखा है, उनके संदर्भ अलग-अलग हो सकते हैं, लेकिन उनके आशय गहरे मानवीय सरोकार से जुड़े हैं। ग्रीस के महान कवि जार्ज सैफरिज का अनुवाद मैंने शुरू किया था। बाद में छोड़ दिया। मुझे यह देखकर अच्छा लगा कि प्रो.शिशिरकुमार दास ने बड़ी योग्यता से वह अनुवाद कार्य पूरा किया और साहित्य अकादेमी ने प्रकाशित किया। गाथा सप्तशती, चर्यागीति, अमरुक शतक और यहाँ तक कि अबुल कलाम आज़ाद की 'इंडिया विन्स फ्रीडम' और भीष्म साहनी के 'तमस' के अनुवाद के पीछे भी मूल प्रेरणा आनंद की ही रही है। प्रकाशन या प्रकाशकीय प्रयोजन तो बाद की बात है।

परिजनों के साथ सुभाष दा।

ये सारे अनुवाद तो आप अंग्रेजी के माध्यम से ही करते होंगे...क्या इसमें आपको पूरा सन्तोष मिलता है? आपको नहीं लगता कि अनुवाद में कुछ छूट गया होगा? फिर आपने हाफिज की रचनाओं को भी अनूदित किया है?

आपके पहले प्रश्न का उत्तर तो यह है कि अनुवाद अच्छा या बुरा तो हो सकता है- सोलहों आने पूरा या खरा नहीं हो सकता। यही बात मूल रचना के बारे में भी क्यों नहीं कही जा सकती? कवि जो सोचता रहा, कहना चाहता है, वह सब-का-सब अपनी ही भाषा में कह पाता या रख पाता है? नहीं। दूसरे, मैंने हाफिज़ का अनुवाद अपने एक मारवाड़ी मित्र की सहायता से किया है। उनका उर्दू-फारसी में बड़ा दखल है। मैं पहले एक कच्चा प्रारूप बना लेता हूँ फिर उसे सँवारता हूँ। हाफिज अपने सूफी मिजाज के लिए बाङ्ला में इससे पहले भी काफी पढ़े गये हैं।

एक प्रश्न जो बार-बार पूछा जाता है कि रवीन्द्रनाथ के बाद बाङ्ला में गान की दिशा खो गयी। वह सुरधारा लुप्त हो गयी- कविता शुष्क हो गयी- उसका छन्द-न्यास, लालित्य या मार्दव नष्ट हो गया- क्या इससे आप सहमत हैं?

परिजनों के साथ सुभाष दा।

कविता की गद्यधर्मिता के चलते इसका गान-पक्ष या गेयता अवश्य ही नष्ट हुई है और इससे कविता का भारी नुकसान हुआ है। स्थापित कवियों के लिए यह कहा गया है कि भैया, गान मत लिखो- वर्ना टिक नहीं पाओगे। बंगाल में कविता प्रस्तुति का एक और पक्ष है इसकी आवृत्ति। इसमें सुर और स्वर तालमेल- 'सुरेर खेला' तो होता ही है। सुर या सरगम के अनुरूप कविता लिखना छन्द की शर्तों पर होता है, लेकिन उससे भाव-लावण्य में वृद्धि होती है, इसे हमारे ज़माने के कवि स्वीकार नहीं पाये थे। हमारा आग्रह अपनी बातों को रखने पर था, भले ही अनगढ़या अधूरे ढंग से। छन्दोबद्ध ढंग से लिखना एक बात है लेकिन किसी सुरलहरी या सरगम में लिखना या किसी के आग्रह पर लिखना मेरे लिए कभी सम्भव नहीं हुआ। ऐसे लिखने वालों को मैं पता नहीं क्यों बहुत पसन्द नहीं करता था। ऐसे गीतकारों में गौरीप्रसन्न मजुमदार बहुत प्रसिद्ध थे- लेकिन मैं कभी उनकी सराहना नहीं कर पाया। आखिर प्रेमचन्द मित्र और अजय भट्टाचार्य ने भी लिखा। हेमन्त कुमार ने मुझसे कई बार कहा कि एकाध गान लिखो भी। उन्होंने मुझे एक शानदार कमरे में बंद कर दिया। ढेर सारे पैसे भी दिये। लेकिन मैं उनकी शर्तों पर लिखने का तैयार नहीं हुआ, यहाँ तक कि स्वतन्त्र गीत या कविता भी नहीं। सलील चौधरी ने भी मुझसे कहा - मुझे अपनी कुछ रचनाएँ दो, मैं सुरबद्ध करूँगा। मेरा उत्साह बढ़ाने के लिए उसने यहाँ तक कहा कि मैं तो पत्रिका का सम्पादकीय भी संगीतबद्ध कर सकता हूँ। मैं राजी न हो पाया। सत्यजित राय संभवतः मुझसे बच्चों के लिए कुछ लिखवाना चाहकर भी मेरे स्वाभाविक असमंजस के नाते कुछ कह नहीं पाये। इधर कुछ सालों से मैं सोचने लगा हूँ कि मेरा यह फैसला पूरी तरह सही नहीं था। कविता गेय हो सकती है, लोक में प्रचलित हो सकती है और दूसरे माध्यमों में भी जा सकती है। आधुनिक जीवन के सवालों- सुख दुःख और असुविधाओं को कविता में हम व्यक्त करते ही हैं और इन्हें सुर का आधार या कोई सरगम मिल सके तो क्या बुरा है? आखिर लोक-संगीत, भटियाली, भवइया, बाउल, कीर्तन इसीलिए इतने लोकप्रिय हैं। यहाँ तक कि आधुनिक गान में ये सारे तत्त्व आ रहे हैं और इस दृष्टि से मैं तो पॉप संगीत में भी बड़ी संभावना देखता हूँ। हालाँकि इसमें उत्तेजक तत्वों की भरपूर छौंक होती है। लेकिन इसमें आम जीवन के शब्द आ रहे हैं। रोजमर्रे के मुहावरे ढल रहे हैं। संयुक्ताक्षर वाले शब्द आ रहे हैं और स्वीकृत हो रहे हैं।

आपका गान से शौक रहा?

हाँ, मैं अपनी टूटी-फूटी आवाज़ के बावजूद काफी गा लेता था। फिर मैं टाइफाइड का शिकार हो गया। मेरा गला बैठ गया। थोड़ी-बहुत सुर-ताल की समझ भी है। तुम्हें बताऊँ अभी कुछ दिन पहले टी.वी. पर काव्य-रचना प्रक्रिया और छन्द पर अंग्रेजी में बहस करते-करते एक गान गाना पड़ा। वह चाहे जैसा भी हो- मेरे लिए मेरा रक्षा-कवच ही था, वर्ना मुझे झक मारकर अपनी टूटी-फूटी अंग्रेजी में हो रही खूली बहस में भाग लेना पड़ता।

लोक में प्रचलित और विद्यमान संगीत की जो परम्परा है, जिसका आपने जिक्र भी किया उससे आखिर अच्छे कवि क्यों कटने लगे हैं ? क्या वह अवसर विशेष या माध्यम विशेष के लिए ही हैं?

नहीं। यही तो हमारी विडम्बना या विवशता है। दरअसल भाषा का एक ही काम या आयाम नहीं होता। मैं ऐसी औरतों को जानता हूँ जो चूल्हे पर दाल चढ़ाकर सारे मोहल्ले से दो-दो हाथ कर आती थीं और देगची में पानी डालकर 'असाधारण सुन्दर' गलियों से हमारे कान अभिषिक्त किया करती थीं। मुझे तो ऐसी बुढ़िया की बातों में कीर्तन का-सा रस मिलता था। यह कीर्तन भी तो भाव और भाषा का नाटक ही है। और क्या है? धीरे-धीरे गाँव की सीधी-सादी और शहर की किताबी जुबान में काफी फर्क आ गया है। भाषा की यह दरार समाज को भी एक दूसरे से अलग कर रही है। खैर। मैं कह रहा था कि एक बार मैं मेदिनीपुर पहुँचा। दरअसल मैं वहाँ काफी सालों के बाद गया था। मैंने सुना था कि वहाँ का घाट-डोम बहुत ही बढ़िया गाता है। मैं कुछ लोगों के साथ उस बूढ़े के यहाँ पहुँचा। रात का वक्त था। पता चला, पिछली रात उसका जवान बेटा गुजार गया है। उसे जब हमारे आने के उद्देश्य के बारे में पता चला तो किसी तरह वह गाने को राज़ी हो गया और रात-भर पागलों की तरह गाता रहा। तब मुझे पता चला कि वेदना और पीड़ा में भाषा किस तरह गेय और तरल हो जाती है। मुझे तो सास-बहू का अनचाहा झगड़ा भी, जब लयबद्ध हो जाता है तो बड़ा दिलचस्प और श्रुतिमधुर लगने लगता है। अगर कविता में यह लयात्मकता आ सके तो वह उसको टिकाऊ ही बनाएगी।

लेकिन हिन्दी में इस तरह का प्रयास कवि-सम्मेलन या मंच के कवियों तक ही सीमित रह गया है - जिसका अपना श्रोता समुदाय है। ऐसे कवियों की संख्या नगण्य हो गयी है जो साहित्य, मंच या दूसरे माध्यम में समान रूप से प्रतिष्ठित हैं।

लेकिन हमारे दौर में ऐसे कुछ कवि और शायर थे जो 'इप्टा मूवमेंट' से जुड़े हुए थे। केरल में भी कविता को छन्द के साथ जोड़कर रखने की परम्परा रही। मुझे याद है बम्बई में सज्जाद ज़हीर ने शंकर शैलेन्द्र से यह कहकर मिलवाया था कि इसने फिल्मों के लिए ऐसे गीत लिखे हैं जो एक साथ प्रगतिशील हैं और लोकप्रिय भी। बात क्या है कि जब किसी कवि की सृजन-धर्मिता का भाव या मूल्यांकन बाज़ार तय करने लगता है तो उसकी स्वाभाविकता या मौलिकता पर असर पड़ता है। काजी नजरुल इस्लाम इसके बड़े भारी शिकार हुए। वे एक अच्छे और बड़ी संभावनाओं के कवि थे। कविताओं के साथ उन्होंने गीत लिखे, ग़ज़लें लिखीं। लेकिन उन पर 'विप्लवी' या 'विद्रोही' कवि का ऐसा ठप्पा लगा कि बाजार उनसे बार-बार 'अग्निवीणा' - जैसी कविताओं की माँग करता रहा। इस फरमाइश से उनका एक व्यापक मानवीय स्तर पर अत्यंत संवेदनशील और कोमल कवि तालमेल नहीं बिठा पाया। वस्तुतः अपनी अन्तः प्रेरणा से जो लिखा जाता है, वही स्वाभाविक और यशस्वी होता है।

ऐसे भगवान कितने कवि हैं जो हमेशा अन्तः प्रेरणा से लिखते रहते हैं और बाहरी ताकतें उन्हें 'डिक्टेट' नहीं करतीं? यह सवाल तो आज और भी बड़ा हो गया है क्योंकि राजनीतिक अवधारणा के साथ-साथ सामाजिक आदर्श का आधार भी हिल गया है।

प्रतिभा अग्रवाल, इंद्रनाथ चौधुरी, स.ही.वात्सायन और नारायण चतुर्वेदी के साथ सुभाष मुखोपाध्याय।

एक कवि अगर वह सच्चे अर्थ में सामाजिक है, 'दरदी' है तो उसका आधार तो सबसे पहले और सबसे बाद में मानवीय ही होगा। विचारधारा और पार्टी, वहाँ तक कि मार्क्सवाद के अन्तर्गत हमने कभी 'वैज्ञानिक समाजवाद' की बात की थी- वह भी एक तरह का 'युटोपिया' ही था। उस बाहरी साँचे में हमने अपने-अपने समय, समाज और सरोकार को रूप देना चाहा। लेकिन चाहे जो भी गलती या जल्दबाजी हुई, इसके कारणों की तलाश की जा रही है। दरअसल कवि और उसकी कविता की ज़मीन अपनी ही माटी होती है। आसमान नहीं। काव्य-सृजन को मानव के स्वभाव से जोड़कर ही देखना होगा। वह किसी भी दबाव से अस्वाभाविक ही होगा।

आप समकालीन राजनीतिक परिदृश्य से अच्छी तरह वाकिफ हैं और कम्युनिस्ट आन्दोलन के बिखराव के बाद आप अमृत डांगे के साथ भी रहे। क्या कवि किसी राजनीतिक आश्रय की अनदेखी नहीं कर सकता ?

बात आश्रय की नहीं, आदर्श की है। श्री डांगे ने अतीत में कोई भूल की या नहीं की या कि हमारी या उनकी पार्टी ने उसी भूल को दोहराया नहीं- बात यह नहीं है। दरअसल समाजवादी व्यवस्था में पूँजीवादी तत्व और पूँजीवादी व्यवस्था में प्रस्तावित समाजवाद की हिस्सेदारी का क्या अनुपात हो- बात अब यहाँ से शुरू करनी होगी। और ख़ामी तो हर व्यवस्था में रहेगी, क्योंकि जो ताकतें गणतांत्रिक होने का दावा करती हैं वे भी सत्ता और व्यवस्था को हथियाए रखना चाहती हैं। 'वोट' और पैसा तो कम्युनिस्ट पार्टी को भी चाहिए। विचारों से सिर्फ बड़ी-बड़ी बातें हो सकती हैं, काम नहीं। पार्टी में अब 'पार्क' और 'प्लाट' की राजनीति चल रही है। सब कुछ प्रापर्टी की सौदेबाजी में तब्दील हो गयी है। पार्टी का चरित्र बदल गया है। कल-कारखाने में नौकरी, कॉलेजों में दाखिला और आपकी नियति भी अब राजनीति ही तय करने लगी है। लोगों के बीच समझ और सद्भाव बढ़ाने के बदले राजनीति लोगों के बीच के अन्तराल को बढ़ा रही है। ऐसे में कोई भी समाज सामान्य या स्थिर कैसे रह सकता है? इसके आदर्श और आधार विचलित न हों- देखना यही है? और अब तो हर एक को देखना है।

आप तो जनता के कवि हैं। आपके प्रशंसक अनपढ़हैं साक्षर भी, गरीब भी। बाहरी और बड़ी ताकतें यह देखकर हैरान होती हैं कि ये गरीब लोग किसी मायने में अधिक सुखी हैं। भारतीय परिवारों में बूढ़े-बुजुर्गों का सम्मान होता है। छोटे-बड़ों का आदर करते हैं। तलाक कम होते हैं। इतने तनाव और मूल्यहीनता के बावजूद क्या आप इसमें किसी तरह की आस्था, समर्पण या विश्वास की शक्ति देखते हैं ?

दरअसल भारत के लोगों को दुनिया अब भी एक खास नजरिये से देखती है। निरक्षर भट्टाचार्य होना या अनपढ़ होना संस्कारहीन होना नहीं है। यहाँ के लोगों को समझ या 'विज़डम' का सम्मान होता रहा है। तमाम दुनिया के लोग यह समझते हैं कि भारत अपनी समस्याओं से जूझ सकता है तो इन्हें सुलझा भी सकता है। वे कहते हैं, यहाँ के लोग किसी दूसरी ही माटी के बने हैं। मास्को में जब मेरा गंभीर ऑपरेशन हुआ तो मैं मारे शर्मिन्दगी के अपने जान-लेवा दर्द को कई-कई दिनों तक झेलता रहा। सब यही समझते रहे कि मुझे योगविद्या आती है तभी तो मैं इस दारुण यन्त्रणा को झेल पा रहा हूँ। पीड़ा और यन्त्रणा को समर्पण समझकर जी लेना या दर्द को दवा समझकर पी लेना कोई छोटी-मोटी बात नहीं है। हम भारतीय इसे अब भी साबित कर रहे हैं।

अच्छा, भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार की घोषणा के बाद आपको कैसा लग रहा है?

भई, यह प्रश्न मुझसे कई बार कई मौकों पर कई लोगों ने पूछा है। मेरी पत्नी गीता ने भी (हँसकर)। मैंने उससे जवाब में यही कहा था कि तुम अगर मेरा चुम्बन लो और पूछो कि कैसा लगा, तो मैं भला क्या उत्तर दूँगा?

दरअसल अखबारों से यह पता चला था कि आपकी आर्थिक स्थिति काफी चिन्ताजनक रही है। बल्कि कोलकाता के एक अखबार (आजकाल) ने यह लिखा था कि आपका परिवार पैसे के अभाव में काफ़ी परेशान था और आपकी आय का कोई जरिया नहीं है।

तुम्हें तो पता है भई, कि मेरी तीन-तीन बेटियाँ हैं। तीनों की शादी, मकान-भाड़ा और उस पर महानगर की मार। मकान मालिक भी बहुत मेहरबान नहीं। उस घर में मैं पिछले बावन साल से रह रहा हूँ। वैसे किराया बहुत ज्यादा नहीं। यह कोई गर्व करने लायक बात नहीं कि कविता की किताबें बिकती बहुत कम हैं। भले ही वे ज्यादा पढ़ी जाती हों या छपती हों। छोटे-बड़े प्रकाशक मेरी रचनाएँ छाप देते हैं, यह तो मैं कह सकता हूँ लेकिन रचनाओं का आर्थिक पक्ष मेरे लिए कभी अनुकूल नहीं रहा। इतमीनान की बात यही है कि मेरी तीनों बेटियों की शादी हो गई है और अब मकान के बारे में कोई-न-कोई फैसला कराना बाकी है। हिन्दी, कन्नड़ और अंग्रेजी के भी कुछ प्रकाशक मेरी चीज़ें छापना चाह रहे हैं। ज्ञानपीठ और राधाकृष्ण प्रकाशन वाले मेरे काव्य-संकलन और उपन्यास छापने वाले हैं। लगता है, स्थिति थोड़ी-बहुत सुधरेगी ज़रूर।

इन दिनों और क्या लिख रहे हैं ?

कुछ खास नहीं। रचनाओं को व्यवस्थित कर रहा हूँ। कुछ छोटी-बड़ी कविताएँ लिखी हैं जो छपने को हैं। अभी तो पत्र-पत्रिकाओं में ही आ रही हैं। कुछ अनुवाद भी पूरे करने हैं। बन्धुवर नामवरसिंह का आग्रह है कि मैं भर्तृहरि और सुभाषित संग्रह के चुने हुए अंशों का अनुवाद करूँ।

लेकिन आपकी उस अधूरी आत्म-जीवनी का क्या होगा जो कभी आपने 'ढोल गोविन्देर आत्मदर्शन' नाम से लिखी थी?

अभी इस बारे में सोचा नहीं है। हमारे चारों ओर का परिदृश्य जिस तरह और जितनी तेज़ी से बदला है- उसमें अपने चेहरे को ही देख पाना और पढ़ पाना बहुत मुश्किल हो गया है। आत्मदर्शन की ललक किस सर्जक में नहीं होती, लेकिन इसके लिए बहुत अवकाश चाहिए.... स

एम.जी.1/26 विकासपुरी, नईदिल्ली, 110018 मो. 9811262257

garvi gurjari
Gujarat State Handloom & Handicrafts Development Corporation Ltd.
(A Government of Gujarat Undertaking)

Patola | Bandhani | Ajrakh | Rogan | Embroidery | Sujani
Patch Work | Tangaliya | Applique & Many More...

Now purchase exclusive
Handlooms and Handicrafts of Gujarat

Showrooms:
New Delhi | Bengaluru | Hyderabad | Kolkata | Chennai | Lucknow | Mumbai | Ahmedabad | Surat
Kevadiya Colony | Rajkot | Bharuch | Bhuj | Gandhinagar | Anand | Bhavnagar | Vadodara | Surendranagar

Shop online: www.garvigurjari.in

हार्दिक बधाई

डॉ. शरद पगारे

गुलारा बेगम, गंधर्व सेन, बेगम जैनाबादी, उजाले की तलाश, पाटलीपुत्र की सामाग्री आदि कई ऐतिहासिक उपन्यासों के लेखक अनेक राष्ट्रीय सम्मान और पुरस्कारों से सम्मानित डॉ.शरद पगारे (इंदौर) को के.के.बिड़ला फाउण्डेशन द्वारा 'व्यास सम्मान' से अलंकृत करने की घोषणा पर हार्दिक बधाई एवं अभिनंदन।

समावर्तन परिवार

उज्जैन, भोपाल, इंदौर, गुना, बुम्बई, सूरत, अहमदाबाद, कोलकाता, नई दिल्ली

ज्ञातव्य है कि समावर्तन द्वारा अगस्त-2015 का अंक शरद पगारे जी के व्यक्तित्व, कृतित्व पर एकाग्र संयोजित किया गया था।

अविरत विकास अग्रसर गुजरात

गुजरात दिखलाता है देश को प्रगति का मार्ग

- जनवरी से अक्टूबर-२०१९ तक आईईएम (इंडस्ट्रियल ऑन्ट्रेप्रेन्योर्स मेमोरेंडम) के अंतर्गत देश में हुए कुल पूंजी निवेश में ५१ फीसदी से ज्यादा हिस्सेदारी के साथ गुजरात देशभर में अव्वल
- निर्णायक सरकार का ऐतिहासिक निर्णय: राज्य की सभी आरटीओ चेकपोस्ट को कीया बंद
- नए **MSME** उद्योग शुरु करने के लिए गुजरात सरकार की क्रांतिकारी पहल : ३ साल तक राज्य में किसी भी प्रकार के निर्माण कार्य की मंजूरी तथा लाइसेंस के बगैर नई **MSME** इकाई शुरु करें
- सूर्य ऊर्जा रुफटॉप योजना: समग्र देश में पहली बार २ लाख परिवार अब सूर्य ऊर्जा से उत्पन्न मुफ्त बिजली का स्वयं करेंगे इस्तेमाल और बाकी बिजली बेचेंगे सरकार को
- व्हाली दीकरी योजना: वार्षिक २ लाख रुपए तक की आय वाले परिवारों को पहले दो बच्चों में से बेटियों को कक्षा १ में प्रवेश के समय ४ हजार, कक्षा ९ में ६००० और १८ वर्ष की आयु होने पर १ लाख रुपए की सहायता
- पहले चार चरणों की अभूतपूर्व सफलता के बाद सेवा सेतु कार्यक्रम के पांचवें चरण का राज्यव्यापी प्रारंभ: नागरिकों की समस्याओं का स्थानीय स्तर पर समाधान : सेवा सेतु कार्यक्रम के जरिए ९९.८१ फीसदी आवेदनों का स्थल पर ही त्वरित निस्तारण

गुजरात के सर्वांगीण विकास के लिए राज्य सरकार प्रतिबद्ध है
- नीतिनभाई पटेल, उप मुख्यमंत्री, गुजरात

शिक्षा का अधिकार
समग्र शिक्षा
सब पढे सब बढे

समग्र शिक्षा शिक्षण विभाग, गुजरात सरकार, गांधीनगर क्वालीटी एन्हान्समेन्ट सेल

होम लर्निंग :

- कक्षा १ से १२ तक के विद्यार्थीयों के लिए शैक्षणिक कार्यो को टीवी के माध्यम से जैसे की दूरदर्शन केन्द्र, डीडी गिरनार चैनल से प्रतिदिन प्रसारित करने का आयोजन।
- कक्षा १ से १२ तक के विद्यार्थीओं के लिए "**दीक्षा पोर्टल**" के माध्यम से सभी विषयों की शैक्षणिक साहित्य सामग्री की आवश्यकता को पूरा करने वाला ओनलाइन प्लेटफोर्म।
- कक्षा १ से १२ तक के प्रसारित हुए सभी शैक्षणिक कार्यक्रमों के लिए समग्र शिक्षा, गुजरात के यूट्यब चैनल e-class के द्वारा शिक्षण।
- होम लर्निंग के अंतर्गत सभी शैक्षणिक वीडियो, पाठ्यपुस्तक एवं शैक्षणिक साहित्य समग्र शिक्षा की वेबसाइट www.ssagujarat.org पर उपलब्धहै।
- कक्षा ९ से १२ तक के विद्यार्थीयों के लिए पाठ्यपुस्तक एवं पूरक साहित्य एक्जाम्प्लर सॉफ्ट कोपी में उपलब्ध कराना।
- सरकारी विद्यालयों के कक्षा ५ से १२ तक के विद्यार्थीयों के लिए माइक्रोसॉफ्ट टीम के माध्यम से वर्च्युअल क्लासरूम आधारित ओनलाईन शिक्षा की व्यवस्था।
- होम लर्निंग के अंतर्गत क्विज एवं हवाट्स एप क्विज का आयोजन।

गुजरात वर्चुअल शाला :

- कक्षा ९ से १२ के विद्यार्थीयों के लिए "**गुजरात वर्च्युअल शाला**" (GVS) के अंतर्गत ओनलाइन लाइव क्लास का आयोजन।
- यूट्यब चैनल, माइक्रोसॉफ्ट टीम्स, फेसबुक लाइव और जिओ टीवी के माध्यम से लाइव प्रसारण और प्राप्त किये अध्ययन की जांच के लिए सप्ताहिक टेस्ट का आयोजन।
- ये सारे वीडियो समग्र शिक्षा गुजरात की वेबसाइट www.ssagujarat.org पर उपलब्ध हैं।

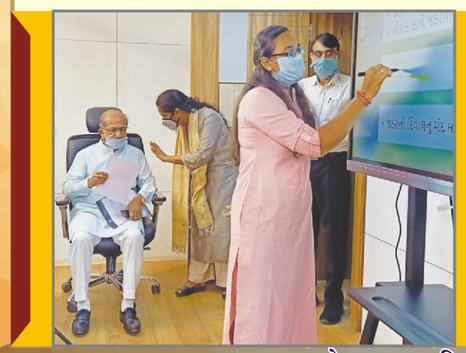

शुभेच्छक समग्र शिक्षा, सेक्टर-१७, गांधीनगर

आईसेक्ट पब्लिकेशन

ज्ञान-विज्ञान, कौशल विकास तथा कला-साहित्य पर हिंदी, अंग्रेजी एवं अन्य भाषाओं में पुस्तकों और पत्रिकाओं का राष्ट्रीय प्रकाशन

सभी लेखकों के लिए प्रस्तुत है आईसेक्ट पब्लिकेशन की

स्व-प्रकाशन योजना

हिंदी भाषा, साहित्य एवं विज्ञान की विभिन्न विधाओं में पुस्तकों के प्रकाशन में आने वाली कठिनाइयों को देखते हुए आईसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल ने लेखकों के लिए स्व-प्रकाशन योजना एक अनूठे उपक्रम के रूप में शुरू की है।

जिन रचनाकारों को अपनी मौलिक, अनूदित, संपादित रचनाओं का पुस्तक रूप में प्रकाशन करवाना है, वे कम्प्यूटर पर साफ-साफ अक्षरों में कागज के एक ओर टाइप की हुई पांडुलिपि की सॉफ्ट कॉपी के साथ आईसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल से संपर्क करें।

आईसेक्ट पब्लिकेशन से पुस्तक प्रकाशन के लाभ ही लाभ

- प्रकाशित पुस्तक आईसेक्ट पब्लिकेशन की पुस्तक सूची में शामिल की जायेगी।
- पुस्तक, बिक्री के लिये सुप्रसिद्ध स्टॉलों एवं मेलों आदि में उपलब्ध रहेगी।
- प्रकाशित पुस्तक की समीक्षा सुप्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराने का प्रयत्न किया जायेगा।
- प्रकाशित पुस्तक, शहरों व कस्बों में स्थापित वनमाली सृजनपीठ के सृजन केन्द्रों में पठन-पाठन और चर्चा के लिए भिजवाई जायेगी।
- पुस्तक के लोकार्पण और साहित्यिक मंच पर संवाद-चर्चा आदि की व्यवस्था की जा सकेगी।
- पुस्तक चयनित ई-पोर्टल (अमेज़न, फ्लिपकार्ट, आईसेक्ट ऑनलॉइन आदि) पर भी बिक्री के लिये प्रदर्शित की जायेगी।

सुरुचिपूर्ण फोर कलर प्रिंटिंग ● आकर्षक गेटअप ● नयनाभिराम पेपर बैक में

कुल बिक्री के आधार पर वर्ष में एक बार नियमानुसार रॉयल्टी भी

पांडुलिपि किसी भी विधा में स्वीकार

आईसेक्ट पब्लिकेशन, आपका पब्लिकेशन

आप स्वयं पधारें या संपर्क करें

- प्रकाशन अधिकारी, आईसेक्ट पब्लिकेशन : 25/ए, प्रेस कॉम्प्लेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल-462011, फोन- 0755-4923952, मो. 8818883165, 9582623368
- अध्यक्ष, वनमाली सृजनपीठ : 25/ए, प्रेस कॉम्प्लेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल-462011 फोन- 0755-4923952, मो. 9425014166,
- E-mail : aisectpublications@aisect.org

SARDAR

GSFC Agrotech

Milieu of Benchmarks....
Beyond Convention

Our Endeavours :

Organized Agri-retail | Agri Advisory & Solutions

R&D backed Products - Boronated NPK, SAG Gold, AS (Granular) | D2D - eGram

GSFC Agrotech Limited

Wholly Owned Subsidiary of

GUJARAT STATE FERTILIZERS & CHEMICALS LIMITED

Fertilizernagar - 391 750, Vadodara, Gujarat. www.gsfclimited.com

Toll Free No.: 1800 123 5000

आदिजाति विकास विभाग, गुजरात सरकार, गाँधीनगर

गुजरात में उमरगाम से लेकर अम्बाजी तक पूर्व पट्टी के आदिजाति विस्तार में कुल 53 तालुकाओं का समावेश होता है जिसमें अनुसूचित जनजाति की बस्ती 89.17 लाख है जिसके ऊपर गुजरात सरकार ने आदि जाति के सर्वांगी कल्याण कार्यक्रम वनबन्धु कल्याण योजना के अन्तर्गत निम्नलिखित मुद्दों पर कार्य 1,00,954 करोड़ रू. का आवंटन किया गया।

सर्वांगी विकास को समर्पित मुख्यमंत्रीजी के 10 मुद्दों का कार्यक्रम (वनबन्धु कल्याण योजना)

- 5 लाख कुटुम्बो के लिये रोजगार लक्षी कार्यक्रम
- शिक्षण की गुणवत्ता और उच्च अभ्यास पर भार
- आदिजाति विस्तार का आर्थिक विकास तीव्रता से हो
- सभी के लिए आरोग्य
- बिजली की सार्वत्रिक उपलब्धता
- सभी के लिये घर
- पीने के लिये पानी
- सिंचाई
- बारमासी रास्ते
- शहरी विकास

गुजरात के बहुलक आदिजाति विस्तार 14 प्रायोजना विस्तार में विस्तारित है

1- पालनपुर-बनासकांठा
2- खेडब्रह्मा-साबरकांठा
3- दाहोद-दाहोद
4- गोधरा-पंचमहाल
5- छोटाउदेपुर-छोटाउदेपुर
6- राजपीपला-नर्मदा
7- भरूच-भरूच
8- मांडवी-सूरत
9- सोनगढ़-तापी
10- वांसदा-नवसारी
11- वलसाड़-वलसाड़
12- आहवा-डांग
13- मोडासा-अरवल्ली
14- लुणावाडा-महिसागर

शुभेच्छक आदिजाति विकास विभाग

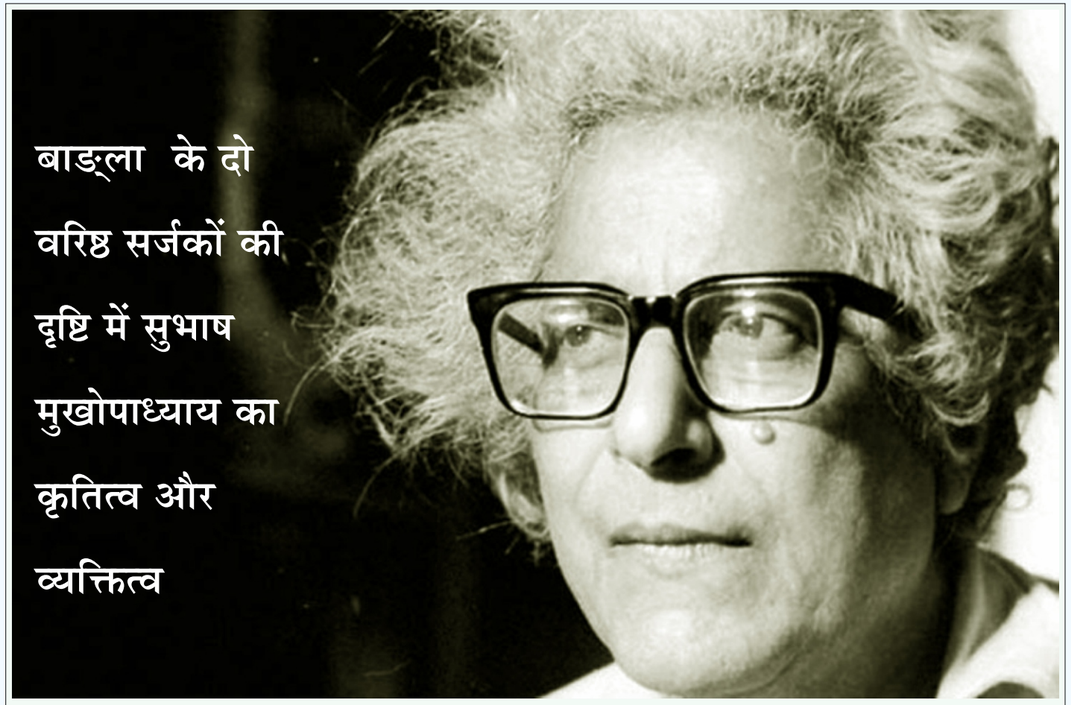

बाङ्ला के दो वरिष्ठ सर्जकों की दृष्टि में सुभाष मुखोपाध्याय का कृतित्व और व्यक्तित्व

उनकी कविता ही उनका 'वीजा' है

सुभाष सरकार

सुभाष मुखोपाध्याय ने वामपंथियों के मुख में भाषा दी थी। वही सुभाष वामपंथियों को छोड़कर चले आए हैं। जब उन्हें ऐसा लगा है कि लाल झंडा, झंडा नहीं रह गया है, लाठी हो गया है वे नाज़िम हिकमत है या पाबलो नेरूदा, यह भी कोई बात नहीं है, वे सोवियत यूनियन बार-बार गये हैं, वहाँ उनकी नज़र में कोई दोष नहीं आया है, उन्होंने जेल काटी है, उन्हें भारत के सभी बड़े सम्मान मिले हैं, वे भारतरत्न भी पा सकते थे, ये सब कोई तर्क नहीं है। वे इन सब अनन्य उपाधियों से बहुत ऊपर थे। स्वाधीनता के बाद वही ऐसे कवि हुए हैं जो कविता को मेघ की मीनार से कल्पना के हिस्टीरिया से अन्धी गली के पास की गली में उतार लाये थे। कविता को अपनी जमीन मिल गयी थी। अंतिम जीवन में वे जब परित्यक्त थे, उन्हें छोड़कर उनके कामरेड साथी भाग गये थे, उस समय यदि ममता बनर्जी आकर उनके पास खड़ी न होती तो स्थिति और भी भयानक हो सकती थी। आज कवि सुभाष मेट्रो स्टेशन पर खड़े होकर जो लोग रवीन्द्र सदन का टिकिट नहीं कटा रहे हैं, वे कटा रहे हैं वे परम्परा से चली आ रही बाङ्ला कविता के लिए टिकिट।

सुभाषदा का मृत शरीर जब केवड़ातला महाश्मशान पर पहुँचा, तब हाथ से गिनने योग्य कुछ ही लोग थे, क्या यही उनका प्राप्य था? जो लोग उनकी कविता पढ़कर बड़े हुए हैं, जुलूस में उनके साथ कदम मिलाकर चले हैं, उनमें से किसी को भी मैं वहाँ नहीं देख सका। वे लोग उस समय बाबू बने गद्दी पर बैठे थे। गद्दी से उतरकर जमीन पर पैर नहीं रख सके थे। मेरा प्रश्न यह है, एक कवि का इससे क्या बनता- बिगड़ता है कि किस पार्टी ने उसे स्वीकार किया और किस पार्टी ने उसे छोड़ दिया। अगर उनकी कविता खराब होती तो दस वामपंथी दल भी उन्हें बचा नहीं पाते। उनकी कविता ही उनकी सबसे बड़ी पार्टी है, उसी पार्टी ने उन्हें बचा रखा है। और भविष्य में भी उन्हें बनाये रखेगी। महाकाल के द्वार पर वे एक उलिया चकातेरा लेकर बैठे हुए हैं, एक तरफ पाब्लो नेरूदा हैं, एक तरफ नाज़िम हिकमत है। उनकी कविता ही उनका 'वीजा' है जिसे दिखाकर वे स्वर्ग का दरवाजा खोल सके हैं। उनकी कविता के ऊपर उनके पाठकों के अलावा और किसी की भी सील मोहर नहीं लगेगी। स

(देश 17 फरवरी 2014 से साभार)

रूपांतर : डॉ.रामशंकर द्विवेदी

(भारतीय कविता के नाजिम हिकमत शीर्षक आलेख का अंश)

''छड़ाओं का गुच्छा'' और सुभाष मुखोपाध्याय

जय गोस्वामी

एक बार एक गद्य रचना में कहा था सुभाष मुखोपाध्याय ने छन्द शब्द में ही ये सब भाव हैं- छोड़ना, बाँधना और आनंद। सिर के ऊपर की खुली, खाली जगह को जब बाँधता हूँ तब वह हो जाती है छन्द, बाँधना, ढकना, ढाँचा, चदोबा। छन्द वस्तु मानो लगाम है। घोड़ा यदि छुट्टा स्थिति में रहता है, तो फिर उसके द्वारा काम नहीं निकाला जा सकता है। घोड़ा है वन में और मैं यहाँ मन-ही-मन घोड़े पर चढ़रहा हूँ तो ऐसा तो हो नहीं सकता है। जंगली घोड़े को पकड़ कर लाना होगा। उसे वश में करना होगा। किन्तु, लाकर उसे रस्सी से बाँधकर रखता हूँ तो भी घोड़े पर चढ़ना नहीं हो सकेगा। उसे छोड़ना होगा। छोड़कर उसे बाँधना होगा। एकदम बँधा भी नहीं और एकदम छुट्टा भी नहीं। रस्सी अथवा साँकल हो तो काम नहीं चल पायेगा। लगाम की जरुरत पड़ेगी। 'करने' की क्रिया से बाद में आयी 'कला' की प्रक्रिया। काज से ही शिल्प चाहना वस्तु को जो मिलाए दे रहा है, इसीलिए हुआ काज। मिलाना हुआ छन्द का धर्म।''

सुभाष मुखोपाध्याय के काव्य जीवन में छड़ा (तुकबन्दियों) की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। उनके 'छड़ा संग्रह' 'संकलन' की भूमिका में इस संग्रह के सम्पादक प्रणव विश्वास ने बताया है : सुभाष मुखोपाध्याय ने 'छड़ा' लिखना कब शुरू किया था। उनकी उम्र जब साठ के पार हो गयी तब ? यह बात इसलिए उठी कि हिसाब लगाकर अगर देखा जाए तो उनकी 'छड़ा' की पुस्तक जब पहली बार निकली तब उनकी उम्र थी ठीक इकसठ वर्ष। छन्दों को लेकर प्रयोग- परीक्षण में जिन्हें सहज सिद्धि प्राप्त थी, छन्द जिनके हाथों में अपने को निःशर्त सौंपकर निश्चित रहते हैं, छड़ा के राज्य में पैर रखने में उन्हें इतना समय क्यों लग गया? प्रश्न तो उठ ही पड़ा है।

इस प्रश्न के उत्तर में विश्लेषण करते हुए सम्पादक प्रणव विश्वास ने यह दिखाया है कि हमें अपनी नज़र डालनी होगी 'पदादिक से 'छड़ानो घूँटि' (बिखरी गोटें) तक फैले हुए सुभाष मुखोपाध्याय के काव्य भुवन की दिशा में। खोजी पाठकों और रसज्ञ समालोचकों ने सुभाष मुखोपाध्याय की प्रारंभिक दौर की अनेक रचनाओं को ही 'छड़ों' के रूप में जो रेखांकित किया था, यह बात हमें प्रणव विश्वास ने याद दिला दी है। वे हमें यह भी बताए दे रहे हैं कि अनेक विपरीत धर्मी गुणों के कारण ये तुकबन्दियाँ स्वभाव की स्वतंत्र है यह बात भी पाठकों को लग रही थी। अनुभूति की तीव्रता के साथ इन सब तुकबन्दियों में अनायास ही मिल जाता है तराशा हुआ विद्रूप, लौकिक चाल और नागर चिन्तन इनमें घुल मिलकर एकाकार हो जाता है। इसकी गति स्वच्छन्न होते हुए भी ये संयत रहते हैं, मितभाषी। सम्पादक के कथन से हम यह जान पा रहे हैं कि विभिन्न काव्य ग्रन्थों में बिखरे हुए इन सब ग्राम्यगीतों को एक जिन्द में बाँधकर संकलित करने का प्रस्ताव चूँकि पहली बार आया था। 1968 ईस्वी में तब तक सुभाष मुखोपाध्याय के ग्राम्य गीतों के नाम से अलग से कोई पुस्तक थी नहीं। यह बात कहने के बाद मात्र एक वाक्य बाद सम्पादक ने कहा है निकली म्याउँ के लिए बिखरे हुए छींटे-छिटके, 1980 ईस्वी में। बाङ्ला लोकगीतों में मानों एक क्षितिज खुल गया।

इसके पास हम लोग और भी कई लाइनें प्रस्तुत कर सकते हैं। ये लाइनें मिल सकती हैं म्याउँ के लिए बिखरे हुए छड़ों कीपुस्तक के पहले कवर पृष्ठ के विवरण में :

''गत चार दशकों में बाङ्ला कविता के क्षेत्र में सुभाष मुखोपाध्याय ने काफी क्रान्ति ला दी है। कभी विषय वस्तु में और कभी शिल्प में। इस बार उन्होंने अपना हाथ बढ़ा दिया है 'छड़ा' के राज्य में एवं पहले आविर्भाव में ही इसने विस्मय कर क्रान्ति ला दी। म्याऊँ के लिए छींटे छिटके पुस्तक बाङ्ला 'छडा' के क्षेत्र में एक युगान्तरकारी संयोजन के रूप में चिरकाल तक रहेगी।, कारण छड़ा के राज्य में एक नया भूखण्ड उन्होंने जोड़ दिया है। प्राचीन कहावतों की तरह अमोद्य और स्मरणीय, संक्षिप्त और तुकदार टटके और साम्प्रतिक ये सब तुकबन्दियाँ एक बार पढ़ते ही हृदय में गुँथ जाते हैं। इनके गठन में उन्होंने बहुत मनोरंजन किया है। दैनन्दिन जीवन में उन्होंने समानधर्मी कुछ शब्द चुन लिये हैं, और उन्हीं के साथ उन्होंने जोड़ दी है तर्कसम्मत एक-एक पंक्ति। जैसे चाय, कॉफी, काको/एइवास रोखो, क्षीर, रबड़ि, पायेस/ खाटुनिर पर आयेस' केष्टनगर, मोदिनीपुर/एड् दोकानटा, रंग-पिपुर, सिढ़ि, रेलिंग, आलसे/दादूर चोखे चालशे, आमेडा, तेतुल, जलपाई/ गरम दूध बल पाई'- ऐसी अजस्र पंक्तियों से ठसी यह पुस्तक कहीं-कहीं अभावित किरणों से दीप्ति बिखेरती रहती है।

हस्ताक्षर हीन यह ब्लर्व किसने लिखा था यह जानने का हमें कौतूहल होना स्वाभाविक है। कारण, सुभाष मुखोपाध्याय की इन तुकबन्दियों का चरित्र इस ब्लर्व में अनवध रूप से व्यक्त किया गया है। पुस्तक के प्रकाशक हैं आनंद पब्लिशर्स। मैं एक समय इस संस्थान के साथ कर्मसूत्र से जुड़ा हुआ था, इसलिए मुझे पता है, यह असाधारण ब्लर्व लिखा था कवि प्रणव कुमार मुखोपाध्याय ने।

सुभाष मुखोपाध्याय के इस छड़ा संग्रह पुस्तक में खूब जतन के साथ हमारे इस बंगालको प्रस्तुत किया गया है। कितने तरह की मछलियाँ हैं, कितने तरह के पक्षी हैं, कितने तरह के गहने हैं, कितने तरह के खाद्य पदार्थ है, कितने तरह के व्रत तीज त्योहार हैं, कितने तरह के बर्तन-भांडे हैं, ये सब हमें इस छड़ा-संग्रह में मिल जायेंगे। सुभाष मुखोपाध्याय के छड़ाओं का गुच्छा उनकी काव्य प्रतिभा का ही और एक असामान्य अभिव्यंजन है। कवि जीवन की ढ़लती हुई वेला में आकर ये सब तुकबन्दियाँ उनके हाथ के स्पर्श से एक अचरज भरा माधुर्य पा गयी है। सुभाष मुखोपाध्याय ने सदा जीवन के साथ जीवन को जोड़ देना चाहा है। छड़ाओं का यह गुच्छा उस जुड़ाव का एक बहुत बड़ा प्रमाण हो गया है। छड़ा संग्रह के सम्पादक ने इसी बात को बड़े सुन्दर तरीके से कहा हैः वस्त्र विश्व के साथ सम्बन्धों के जिन धागों को जोड़ जोड़कर तैयार होता है हमारा यह मानवीय विश्व, उसी के चारों ओर घुम-घुमकर प्रकाश निक्षेप करने का एक आश्चर्यजनक खेल खेला है सुभाष मुखोपाध्याय ने अपनी छड़ा की पहली पुस्तक में।'' स

''पदातिक कवि का यात्रापथ'' शीर्षक आलेख का अंश
('देश' 17 फरवरी 2019 से साभार)

रूपांतर : डॉ.रामशंकर द्विवेदी

मेरा जीवन ही मेरा संदेश

(गांधी स्वयं एक विचार)

रमेश दवे

समावर्तन के जन्मोत्सव को तेरह वर्ष पूर्ण हो गए तथा यह अंक चौदहवें वर्ष का पहला अंक है। समावर्तन ने अपने कलेवर, कृतित्व और कृतीजनों के सक्रिय और सार्थक सहयोग से इतनी लंबी यात्रा नए-नए प्रयोगों को एकाग्र कर जो रंगशीर्ष रचा, वह हिन्दी पत्रकारिता का नवप्रभात माना गया। अब समावर्तन 'विचार विश्व' का यह स्तंभ प्रारंभ कर लेखकों, पाठकों, सहयोगियों को पुरातन, सनातन और अधुनातन विचारों से साक्षात करने की दिशा में यह नूतन प्रयाण कर रहा है जिसे हम विश्व-मानव गांधी के चिन्तन से प्रारंभ कर रहे हैं। आशा है समावर्तन के पाठक इस स्तंभ को अपने आत्म-चिंतन से अधिक समृद्ध करेंगे। - संपादक

विचार का विश्व विराट होता है। उसे देश-काल की भौतिक सीमाओं में सीमित कर संकीर्ण नहीं बनाया जा सकता। गौतमबुद्ध का आत्म-आलोक जिस प्रकार सृष्टि एवं समष्टि आलोक बना, गाँधी ने वैसा ज्ञानोदय - संपन्न आलोक न रचकर कर्म का आलोक रचा, अहिंसा और सत्य का सगुण और सार्थक आलोक रचा और जीवन का आलोक रचकर, दो-दो विश्वयुद्धों की जघन्यता से कंपित और पीड़ित मानव-जाति को शांति का साहस दिया, प्रेम का परिवेश दिया, अहिंसा की अदम्य शक्ति दी और सत्य को ईश्वर के रूप में स्थापित कर न स्वयं को महापुरुष, महात्मा या अवतार घोषित किया बल्कि ऐसा जीवन जिया जो उनका जीवित संदेश बन गया।

गाँधी मुर्त्तिमान विचार थे। वैसे उन्हें एक राजनीतिक विचारक के रूप में स्वीकार तो कर लिया गया लेकिन वे तो विचार के साथ ऐसे प्रश्न विश्व में प्रविष्ट हुए कि उनके आत्म-प्रश्न और आत्म उत्तर हीन दर्शन बन गए, विचार बन गए। जीवन के संदेश बन गए और कर्म के स्वाभिमानी एवं स्वावलम्बी आदर्श बन गए। गांधी ने महावीर एवं बुद्ध की अहिंसा का मार्ग अपना कर उसे प्रशस्त किया और जैन मुनि रायचंद्र तो उनके अहिंसा-गुरु थे, बुद्ध के जीवन से प्रेरित होकर वे उस समाज की पीड़ा के साथ खड़े हो गए जो उपेक्षित, अपमानित, वंचित और वर्जित शुद्ध-समाज या अंतिम व्यक्ति का अन्त्यज समाज माना जाता था। स्वामी विवेकानंद ने जिन्हें दरिद्रनारायण कहा था- गांधी उन्हीं दरिद्र नारायणों की सेवा में लगकर जड़ता का मूर्त्तिभंजन करने लगे। गांधी ने कोई धर्म या पंथ घोषित नहीं किया किन्तु भारत को भारत की आध्यात्मिक आस्था, ज्ञान और रचनाओं का अहसास कराया। गांधी ने ही तो कहा था कि यूनान, रोम अर्थात पश्चिम की संस्कृति नष्ट हो गई, उनका पुरातन सनातन नहीं बना, वे भौतिक उन्माद के शिकार हो गए किन्तु भारत विपरीत से विपरीत स्थितियों में भी जीवित रहा और आज भी जीवित है। कोई विदेशी शक्ति या सभ्यता भारत का संस्कार या संस्कृति मिटा नहीं सकी, भले ही दो चार प्रतिशत परिवर्तन हुए हों।

गांधी मनुष्य में मनुष्य देखते थे ठीक अपने जैसा मनुष्य, गांधी मनुष्य में ही विचार देखते थे, ठीक अपने ही विचार की तरह, गांधी मनुष्य में मनुष्य का अध्यात्म देखते थे, दर्शन देखते थे, ठीक अपने जीवन की तरह। 'हिन्द स्वराज' के प्रश्नोत्तर एक प्रकार से उनका प्रश्न-उपनिषद् कहा जा सकता है। ऋषि याज्ञवल्क्य ने जो प्रश्न-उत्तर प्रणाली गार्गी से संवाद में अपनाई थी गाँधी के समक्ष यदि कोई गार्गी थी तो भारतीय जनता थी, भारतीय मनीषा और पाँच हजार वर्ष की जीवंत सभ्यता थी। वे न तो याज्ञवल्क्य बने, न सुकरात बल्कि उन्होंने दोनों से आगे जाकर अपने अन्दर के मनुष्य और मनुष्यता का अनावरण एवं उद्भासन या उद्घाटन किया। वे अपने संबोधनों में आश्रय तक सीमित न रहकर, जन-संवादी, जन-संबोधी बन गए।

आज हम कृषि, उद्योग, प्रौद्योगिकी, तकनीकी युग सभी के शिखर छूते हुए मानव-सभ्यता को भौतिक उपलब्धियों को कीर्त्तिमान तो कर चुके हैं लेकिन भौतिक वस्तु हो या व्यक्ति वह वय-जीवी होता है, विचार-कालजयी होता है। विचार मार्क्स का हो या महत्मा अर्थात मोहनदास गाँधी का, विचार के रूप में गांधी का महात्मा भी जीवित है, मोहन भी जीवित है। गांधी का कर्म दर्शन, स्वावलम्बन दर्शन, चरखा-दर्शन, प्रार्थना दर्शन, सेवा-दर्शन, सब उनके सत्य और अहिंसा के दर्शन से जन्में हैं। उनका राजनीतिक दर्शन सत्यमेव जयते के साथ एक प्रकार न्याय-दर्शन है, विचार एक प्रकार सांख्य-दर्शन है और उनका जीवन योग-दर्शन है। गाँधी को विचार-संज्ञा और विचार-प्रज्ञा में जीवित रखने का अर्थ है गाँधी को जिस प्रकार पूरे विश्व ने अपनाया है, गाँधी का वह विश्वास सनातन बने, शाश्वत बने और उनका संदेश मनुष्यता की प्रेरणा बने। स

एस.एच.19 ब्लॉक-8 सहयाद्रि परिसर, भदभदा रोड,
भोपाल (म.प्र.) फोन-0755-2777048

हेमंत देवलेकर की कविताएँ

युवा कवि हेमंत देवलेकर की कविताओं से गुजरना वह सुखद अहसास है जो मौसम की बारीकियों को समझने, समय को बीतते हुए महसूसने और रिश्तों की आँच में तपने पर ही महसूस किया जा सकता है। उनकी कविता के अनूठे बिम्ब काव्य भाषा को मितभाषी लेकिन संप्रेषणीय बनाते हैं। भुला दिए गए को वे इस तरह कविता का विषय बनाते हैं कि मानो गुजरे पल हुलस कर वर्तमान में जीवंत हो लौट रहे हों। पहली कविता 'पौष' में वे जनवरी-फरवरी को साक्षात कर देते हैं जहाँ कोहरे की चादर और अमलतास की चेतना शून्य फलियों के बीच बुलबुल ग्रीष्म को शीत की गिरफ्त से मुक्त कराने का क्रांति-गीत गा रही है। एक छोटी-सी कविता में प्रकृति के इतने रंग और संदेश भर देना आसान नहीं होता। 'समय और बचपन' कविता मानो हमें रेतयड़ी के सामने खड़ा कर देती है जहाँ रेत कणों की शक्ल में समय गिरते हुए बीत रहा है। यहाँ काल और बाल दोनों के मनोविज्ञान है, दर्शन है और खिलंदड़ापन भी, यहाँ तक कि बच्चों की संगत से समय को बदलने की उम्मीद भी छितरी हुई है जो पूरी कविता को एक नया परिवेश देती है। 'फ्लाइंग सीड' बीजों के प्रकीर्णन को लेकर लिखी गई कविता है। यहाँ बीज एक पैराशूट है जो अपने वंश का प्रसार करने हवा में भटक रहा है। कविता के अंत में यह पैराशूट रोजगार की तलाश में भटक रहे व्यक्ति में तब्दील हो जाता है। यहाँ प्रकृति के सूक्ष्म प्रेक्षणों में नए-नए बिम्ब खोज कर एक पादपीय प्रक्रिया को नया अर्थ-विस्तार दिया गया है। 'फेरीवाले' एक मार्मिक कविता है जिसमें गली-गली अबूझ आवाज में फेरी लगाते लोगों को केन्द्र में रखा गया है। व्यापार की इस पुरातन शैली पर अब विदेशी कंपनियों की नजर है। कवि इन आवाजों में छुपे दर्द को चीन्हता है-'फेरी वालों की पुकार/ आगाह करती एक आखिरी चीख है/ जो पानी में डूबते एक हिलते हाथ से आ रही है।' 'रेल में से नदी' आम मनुष्य की मान्यताओं पर एक तंजनुमा प्रेक्षण है। कविता का अंत कवि के सवाल से होता है जहाँ पूछा जा रहा है कि ये सिक्के घाटों पर याद क्यों नहीं आते? यह सवाल कहीं-न-कहीं कवि के मानवीय सरोकारों को उजागर करता है। 'मुहाँसे' एक बहुत छोटी कविता है जो उन लोगों पर कटाक्ष है जो नागरिकता या सहअस्तित्व पर गैरजरूरी सवाल उठाते हैं। इस दिलचस्प कविता का सबसे बड़ा चमत्कार इसका शीर्षक है। 'पेड़ों का अंतर्मन' कविता में विनष्ट होते जंगल और इस तरह बिगड़ते पर्यावरण की चिन्ता की गई है। युवा कवि की दृष्टि दरवाजों और फर्नीचर इत्यादि में भी वह पेड़ ढूँढलेती है जिनसे उनका निर्माण हुआ है। यह कविता उन मूक, कटे हुए पेड़ों से एक बातचीत है-आत्मीयता और सहानुभूति से भरी। 'परागण' एक बार फिर प्राकृतिक क्रिया पर लिखी बहुत सुंदर कविता है। जब परागकण पुष्प के स्त्री अंग (जायांग) तक पहुँचते हैं तभी उनका जीवन-चक्र आगे बढ़ता है। यहाँ इस पुष्पीय प्रजनन की प्रक्रिया को बिम्बों की खूबसूरती ने फूलों की प्रेमकविता बना दिया जिसमें तितली की निर्णायक भूमिका होती है। 'चार आने घंटा' एक और मार्मिक कविता है जिसमें कवि ने अपना बचपन याद किया है। साइकिल चलाना सीखने जैसे उपक्रम में कवि ने वह समय याद किया है जब मध्यवर्ग आर्थिक तंगी में जरूर था लेकिन साहचर्य, रिश्तों और सामाजिकता की दृष्टि से कितना सम्पन्न था। इस स्वार्थी और आत्मकेन्द्रित युग को कवि ने मनुष्यता के संकट का दौर कहा है जिसके उपचार तकनीकों में खोजे जा रहे हैं। 'डिंबु टिम के लिए' कविता नहीं बल्कि एक शांति-गीत है जिसमें युद्ध की विभीषिका का सीधे-सीधे नकार है। सत्ता और साम्राज्य के लालच ने पूरी दुनिया को टुकड़ों में बाँट दिया है। कवि की आकांक्षा है कि तमाम तोपें पिचकारियों में बदल जाए और उनसे बारूद की नहीं रंगों की बारिश हो। जाहिर है यह तभी संभव है जब नई पौध की मासूमियत के हवाले समूचा कार्य-व्यापार हो। 'चाँदा' भी बहुत छोटी और खूबसूरत कविता है। एक रेखागणितीय उपकरण के जरिये कवि ने शीतल रोशनी देने वाले ग्रह को बचा लेने की आकांक्षा जाहिर की है। नष्ट या क्षरित होते को बचा लेने में दरअसल उसके निर्माण का भाव भी छुपा होता है। 'अभिशप्त' कविता द्रोण एवं एकलव्य के मिथक पर आधारित है। इसे कवि ने फैंटेसी के रूप में दो भागों में लिखा है। कविता के पूर्व भाग में चर्चित यटना का विवरण है जबकि दूसरे भाग में शिष्य के प्रति तिरस्कार और अन्याय के फलस्वरूप उपजा हाहाकार है। यह प्रतिकार का एक काल्पनिक मगर काव्यात्मक अंदाज है। 'मालगाड़ी का नेपथ्य' हमारी उपेक्षाओं को झेल रही वस्तुओं के अन्तर्मन की व्यथा है। लकदक और चकमक के ग्लैमर की चधि में कितनी जरूरी चीजें भुला दी जाती हैं। यहाँ मालगाड़ी की तुलना उन उपेक्षित और तिरस्कृत मजदूरों से की गई है जो इतिहास के पन्नों पर हाशिए में खिसका दिए गए हैं। हेमंत देवलेकर एक प्रतिभाशाली युवा कवि हैं जो प्रकृति, मानवीय रिश्तों और बदल रहे समय पर अपनी गहन प्रेक्षकीय दृष्टि द्वारा इन्हें सर्वथा नए रूप में परिभाषित करते हैं। यहाँ सृष्टि को बचा लेने की आकांक्षा भी है और हाट, मेले-ठेले को संरक्षित करने की बेचैनी भी।"

निरंजन श्रोत्रिय
9827007736

पौष

कोहरे ने लगाया
आपातकाल जारी है
और अमलतास पर ताले पड़े हैं

सलाखों-सी लम्बी
अमलतास की चेतना शून्य फलियों के सामने
काली टोपी पहने
ठिठुरती बुलबुलें गाती हैं
जनवरी के क्रांति गीत

वे ग्रीष्म को आजाद कराने आई हैं।

समय और बचपन

(चिंपुड़ा के लिए)
उसने मेरी कलाई पर
टिक टिक करती घड़ी देखी
तो मचल उठी वैसी ही घड़ी के लिए

उसका जी बहलाते
स्थिर समय की एक खिलौना घड़ी
बाँध दी उसकी नन्हीं कलाई पर

पर घड़ी का खिलौना
मंजूर नहीं था उसे
टिक टिक बोलती, समय बताती
घड़ी असली मचल रही थी उसके हठ में

यह सच है कि बच्चे समय का स्वप्न देखते हैं
लेकिन मैं उसे समय के हाथों में कैसे सपि दूँ
क्योंकि वह एक कुख्यात बच्चा चोर है

तभी उसकी जिद ने मेरी कलाई पकड़ ली
बच्ची की आँखों में जीवन की सबसे चमकदार
चीज देखीः कौतुहल
और मेरे पास क्या था? खुरदुरा,
घिसा-पिटाः अनुभव
जिसने मुझे डरना ही सिखाया
ऐसा अनुभव किस काम का जो
बच्चों का कौतुहल ही नष्ट कर दे

हो सकता है बच्चों की संगत से
समय बदल जाए

मैंने टिक टिक करती असली घड़ी
बच्ची की कलाई पर बाँध दी
और समय उसके हवाले कर दिया।

फ्लाइंग सीड

यह कितना रोमांचक दृश्य है
किसी एकवचन को बहुवचन में देखना
पेड़ पैराशूट पहन कर उतर रहा है

वह सिर्फ उतर नहीं रहा
बिखर भी रहा है
पत्थर हों या पेड़ मन सबके उड़ते हैं

हर पेड़ कहीं दूर फिर अपना पेड़ बसाना चाहता है
और यह सिर्फ पेड़ की आकांक्षा नहीं
आजीविका की तलाश में भटकता हर कोई
उड़ता हुआ बीज है।

फेरी वाले

(जे ईईई वाले ए ए ए ई ई ई वाले
कटला बाटल हो)
वे अपनी आवाजों को सायरन की तरह बजाते हैं
और गिरस्थी के तहखानों में गर्क लोगों को
खिड़की तक खींच लाते हैं

वे व्यापार की प्राचीनतम शैली,
बाजार का अमूर्त चेहरा
परम्परा की तरह सदियों से
चले आ रहे हैं फेरी वाले

(आ ईईई विया लो बला मा ए ए ए ए)
डॉक्टरी पर्चों जैसी लिखवट
सरीखी उनकी आवाज
वे साफ-साफ शब्दों में पुकारना नहीं चाहते
ठेले में बेतरतीबी से समाई
अनगिनत जरूरतों को वे रहस्य बना कर पुकारते हैं
और आसपास एक मजमा लगा लेते हैं।

अब धीरे-धीरे
छावनी बनता जा रहा है बाजार
जहाँ रोजमर्रा की हर
छोटी-मोटी मामूली चीज बेचने
विदेशी कम्पनियाँ डटी हुई हैं
तो कैसे बच पाएँगे हमारे आसपास
हाट, मेले, ठेले...?

(रिही ईई लो ओ ओ ओ माई रीही लो ओ ओ)
फेरीवालों की पुकार
आगाह करती एक आखिरी चीख है
जो पानी में डूबते एक हिलते हाथ से नजर आ रही है।

रेल में से नदी

जैसे ही पता चला
कि नदी आने वाली है
पूरे डिब्बे में खलबली-सी मच गई

हर कोई जेब टटोलने लगा
बटुए में झांकने लगा
उस वक्त जिंदगी की सबसे बड़ी जरूरत
सिर्फ एक सिक्का थी
जिसे मिल गया
उसमें नदी-सा पूर आ गया
जिसे न मिला
वह रेत की नदी हो गया

बीते जमाने के सिक्के
शायद इसी वक्त के लिए
अंटी में बाँधे थे बुजुर्गों नेः
बच्चे सिक्के लिए खिड़की से झांक रहे थे

पूरा डिब्बा नदी की प्रतीक्षा में
जितना सिक्का था
उतना ही नदी था

नदी आई...
यात्रियों ने फटाफट सिक्के डाले
किसी महान उत्तरदायित्व के पूरे होने का
आत्म संतोष बिखरा था डिब्बे में

सोचता हूँ
रेल में से ही नदी
नदी क्यों दीखती है
क्यों हमें रेल में से डाला गया सिक्का
घाटों पर याद नहीं रहता ?

नदी अपना अस्तित्व सिक्कों में तलाशती है।

मुंहासे

गेंदे के कुछ फूल खिले हैं
गुलाब की क्यारियों में

उनकी अवांछित नागरिकता पर
गुलाब उठाते हैं सवाल

-'तुम यहाँ क्यों ?'

ढीठ हैं फूल गेंदे के
सिर उठा कर देते हैं जवाब
-'वसंत से पूछो'।

पेड़ों का अंतर्मन

कल मानसून की पहली बरसात हुई
और आज यह दरवाजा
खुशी से फूल गया है

खिड़की दरवाजे महज लकड़ी नहीं
विस्थापित जंगल होते हैं
मुझे लगा, मैं पेड़ों के बीच से आता-जाता हूँ
टहनियों पर बैठता हूँ
पेड़ों की खोखल में रखता हूँ किताबें
मैं जंगल से घिरा हूँ
किंवदंतियों में रहने वाला
आदिम खुशबू से भरा जंगल

कल मौसम की पहली बारिश हुई
और आज यह दरवाजा
चौखट में फँसने लगा है
वह बंद होना नहीं चाहता
ठीक दरख्तों की तरह

एक कटे हुए जिस्म में
पेड़ का खून फिर दौड़ने लगा है
और यह दरवाजा
बचपन की स्मृतियों में खो गया है:
फैलाकर बाँहें
हजार हथेलियों में झेलना बारिश को
और झूमने लगना

वह आज फिर हरा हुआ है।

परागण

तितली के होठों में दबे हैं
दुनिया के सबसे सुंदर प्रेम पत्र

तितली एक उड़ता हुआ फूल है

हँसी किसी फूल की
उड़कर जाती है
एक उदास फूल के पास

उड़कर जाता है मन एक फूल का
एक फूल का स्वप्न
उतरता है किसी फूल के स्वप्न में

दो फूलों के बीच का समय
कल्पना है एक नए संसार की

तितली की तरह
सिरजने की उदात्तता भी होना चाहिए
एक संवदिया में।

चार आने घंटा

यह बात उन दिनों की है
जब बच्चों के पास नहीं होती थी अपनी साइकिल
किराये की साइकिलें ही होतीं मुफीद
सीखने के लिए
किराया-चार आने घंटा

एक शांत-सी गली में
नन्हीं साइकिल चलना सीखती
और गुरूत्व बल को खुराफातें सूझतीं
यह उन दिनों की बात है
जब हर लड़खड़ाती साइकिल के साथ
एक भाई या दोस्त दौड़ा करता था
बेहद चौकन्ना और जवाबदार

वह टेका लगाने की बल्ली भी था
और मटका थापते कुम्हार का हाथ भी
संतुलन नहीं था उसके बिना संभव
गुरूत्व के सारे बल बेअसर थे उसके आगे

आज इतनी संपन्नता
कि हर बच्चे के पास साइकिल
लेकिन विपन्नता बस इतनी
कि साइकिलों के साथ दौड़ने वाले
भाई या दोस्त अब कहीं नहीं

समय सबसे महँगी धातु है
दूसरों को गढ़ने में इसे गँवाना
अब एक आत्मघाती विचार

यह मनुष्यता के संकट का दौर है
और उपचार तकनीक में खोजे जा रहे

अब देखिए
नन्हीं साइकिलों के पीछे दाएँ-बाएँ घूमते
दो छोटे-छोटे रक्षा पहिए

जब देखता हूँ उन्हें बचाव में घूमते
याद आते हैं साथ दौड़ते भाई या दोस्त
बेहद चौकन्ने और जवाबदार
और वह समय भी
जो मिट्टी की तरह हर कहीं उपलब्ध था
और उसका कोई किराया नहीं था।

डिंबु टिम के लिए

तू अगर फौज में भर्ती हो जाए
तो यकीन है सारी तोपें
पिचकारियों में बदल जाएंगी

फिर उनसे गोला बारूद नहीं
रंग बरसाए जाएंगे

सरहदों के उस पार
जहाँ गिरेंगे तेरे रंगीले गुब्बारे
खून खराबे की आदी हो चुकी धरती
महसूसेगी अपना नया जन्म होते हुए

अब तक के इतिहासों में दर्ज है
पड़ोसी मुल्कों के बीच अक्सर होती शांति वार्ताएँ
अक्सर होते शिखर सम्मेलन
इन महज दिखावटी रस्मों के पीछे छुपा होता है
युद्धों का निर्मम चेहरा अक्सर
तंग आ चुकी है दुनिया दोगलेपन से

अब जो इतिहास बने
उसमें ऐसे हुक्मरान हों
जो सरहदों पार की जनता को भी
अपनी अवाम समझें

तू अगर फौज में भर्ती हो जाए तो यकीन है सीमाओं पर लगी
कंटीले तारों की बाड़ काट दी जाएंगी
और खोल दी जाएंगी तमाम सरहदें

फिर यह पृथ्वी
फिजूल टुकड़ों में बंटी नहीं होगी
तब्दील हो चुकी होगी
एक घर एक आँगन में।

चाँदा

वह आधे चन्द्रमाँ को
हाथ में उठा लेती है

वह आधे चन्द्रमाँ के
आर-पार देखती है

वह कागज पर
आधे चन्द्रमाँ के
टुकड़े उतार लेती है

वह आधे चन्द्रमाँ को
फिर साबुत बचा लेती है।

अभिशप्त

द्रोणाचार्य लौट चुके थे अँगूठा लेकर
एकलव्य वहीं पड़ा था निश्चेष्ट
रक्त फैला था पास ही
उसके कबीले के लोग सारे जमा थे आसपास
इतना भीषण था आक्रोश उनमें कि
निश्वासों से काँप-काँप जाता था जंगल।

शाप बनकर फूटा क्रोध उनका
गुरू द्रोण जा चुके थे दूर, सुनाई उन्हें दिया नहीं
कान एकलव्य के पड़े थे निस्पंद
सुनाई उसे भी दिया नहीं
सुन कोई नहीं पाया, शाप वह क्या था?

गुरू द्रोण ने एक बहती नदी में
उछाल दिया कटे अँगूठे को
और धूल उड़ाता रथ उनका लौट गया।

-00-00-

कहते हैं वह शाप उस युग में फला नहीं
उल्का बनकर अंतरिक्ष में भटकता रहा

-00-00-

बहुत बुरे सपने से आज नींद खुली
एक विशालकाय उल्का पृथ्वी से टकराई थी
और सब कुछ उथल-पुथल था
हजारों सदियाँ गर्त से निकलकर सामने आ गईं

मैंने देखा
पृथ्वी पर सिर्फ अँगूठों का अस्तित्व है

सुबह-शाम दफ्तरों को जाने वाली सड़कों पर
रेलों में सिर्फ अँगूठे ही भाग रहे हैं

शरीर का सारा बल, पराक्रम अँगूठों में सिमट चुका
कितनी कलाएँ, उनका कौशल, भाषा
यहाँ तक कि आवाज भी
अँगूठों के अलावा बाहर कहीं न थी
एकदम वास्तविक से लगते
बड़े-बडे आभासी पहाड़ों को
धकेल रहे हैं अँगूठे
और आश्चर्य कि पसीने की एक बूँद तक नहीं।

निश्चेष्ट पड़ी हैं मनुष्य की भुजाएँ
जैसे एक दिन संज्ञाशून्य पड़ा था एकलव्य

लौट आया है अँगूठा उसका
और फैल गया है गाजर घास की तरह पृथ्वी पर

अचानक मुझे सुनाई दिया वह शाप।

मालगाड़ी का नेपथ्य

रेल्वे स्टेशन की समय सारिणी में
कहीं लिखा नहीं होता उनका नाम
प्लेटफॉर्म पर लगे स्पीकरों को
उनकी सूचना देना कतई पसंद नहीं
स्टेशन के बाहर खड़े साइकिल रिक्शा, ऑटो, तांगे वालों को
कोई फर्क नहीं पड़ता उनके आने या जाने से
चाय नमकीन की पहियेदार गुमटियाँ

कोने में कहीं उदास बैठी रहती हैं
वजन बताने की मशीनों के लट्टू भी
कहाँ उनके लिए धड़का करते हैं
आधी नींद और आधे उपन्यास में डूबा
बुकस्टॉल वाला
अचानक चौंक नहीं पड़ता
किताबों पर जमी धूल हटाने के लिए

माल गाड़ियों के आने जाने वक्त
पूरा स्टेशन और पूरा शहर करीब-करीब
पूरी याददाश्त खोए आदमी-सा हो जाता है
वे समझती सब कुछ हैं
कहती कुछ भी नहीं

भारी भरकम माल असवाब के साथ
ढोती हैं दुनिया जरूरतें
और ला लाकर भरती हैं हमारा खालीपन

एक्सप्रेस ट्रेनों की खातिर
हमेशा ही रोका गया उनका रास्ता
किसी प्रतिकार के बजाय
स्वीकार लिया उन्होंने अपना भाग्य समझकर

दो प्लेटफॉर्मों के बीच सुनसान पटरियों से
अँधेरे में चुपचाप गुजर जानाः
यह दुनिया के तमाम मजदूरों की कहानी है
एक-सी उपेक्षित, शोषित और
इतिहास के पन्नों से खारिज। स

नाम : हेमंत देवलेकर
जन्म : 11 जुलाई 1972 को उज्जैन में
शिक्षा : आई टी आई
सृजन : दो काव्य संग्रह 'हमारी उम्र का कपास धीरे-धीरे लोहे में बदल रहा है' तथा 'गुल मकई' प्रकाशित। रंग कर्म में रूचि। विहान ड्रामा वर्क्स से सम्बद्ध।
सम्मान : वागीश्वरी सम्मान, अभिनव शब्द शिल्पी सम्मान, स्पंदन युवा सम्मान, कर्मभूमि सम्मान, कला साधना सम्मान।
सम्पर्क : 11, ऋषि वैली, वैशाली नगर, कमला नगर थाने के पास, भोपाल-462 003
मोबाइल : 7987000769
ई-मेल : hemantdeolekar11@gmail.com

अपने समय और समाज के ज्वलंत प्रश्नों से जूझता आज का आख्यान

(प्रसंग में सुश्री सुषमा मुनीन्द्र की प्रभावी कथा ''परलोक सुधारने के लिए'')

भारत एक धर्मप्रधान देश है। धर्म यहाँ की जनता के मन-प्राणों में बसता है। नैतिक मूल्यों की दृष्टि से यह अच्छा है (किसी भी सत्ता को ऐसी प्रजा पसंद आती है।) और भारत में प्राचीन काल से लम्बे समय तक सुख-शांति का निस्संदेह यह एक महत्वपूर्ण कारण भी रहा, साथ ही वैदिक संस्कृति और दर्शन के तत्व-ज्ञान को जन-जन द्वारा दी गई सहमति और स्वीकृति को भी इस संदर्भ में भुलाया नहीं जा सकता, लेकिन बाद के समय में धर्म का दर्शन पीछे छूटता चला गया और धार्मिक कर्मकाण्ड हावी हो गया। अब इस क्रमिक परिवर्तन के भी कई कारण हैं जिनपर चर्चा करना फिलहाल संभव ना होगा लेकिन इस कर्मकाण्ड में तेजी से फैलते पाखण्ड ने समाज का बहुत नुक्सान किया। पाखण्ड ने हमारे अमूल्य सनातन मूल्यों, उत्कृष्ट परम्पराओं और समता के संस्कारों को गहरी क्षति पहुँचाई, दूसरे वर्ण-व्यवस्था के विकृत रूप से उत्पन्न जातिवाद और गैर-बराबरी के प्रचलन से पाखण्ड को ताकत और गति मिली क्योंकि समाज के बहुत बड़े तबके को शिक्षा से, विशेष तौर पर संस्कृत के ज्ञान से वंचित रखा गया। इस स्थिति का भयावह लाभ पुरोहित वर्ग द्वारा उठाया गया जिसके शिकंजे में आसानी से स्त्रियाँ फँसीं। फलतः समाज में स्त्रियों के हालात निरन्तर खराब होते गए। सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्थितियों की प्रतिकूलता ने उन्हें अपने इहलोक और परलोक सुधारने का एकमात्र रास्ता कर्मकाण्ड की शरण में जाना ही समझाया।

वर्तमान समय में हालत तो कुछ बदली लेकिन अभी भी धार्मिक कर्मकाण्ड का शिकंजा समाज के कुछ वर्गों में बरकरार है। इसी मुद्दे पर हिन्दी साहित्य की वरिष्ठ और प्रतिष्ठित लेखिका सुश्री सुषमा मुनीन्द्र की ताजी कहानी ''परलोक सुधारने के लिए'' आज यहाँ प्रस्तुत है। कहानी में दर्शाया गया प्रसंग साधारण है और हम सभी ने कई बार, अपने आस-पास उसे देखा होगा। एक सम्पन्न मध्यवर्गीय परम्परागत परिवार में घर की बुजुर्ग अम्माँ को अपना परलोक सुधारने के लिए भागवत-पाठ कराने की प्रबल इच्छा हुई जिसे उनके बेटों ने किसी तरह स्वीकार भी किया, लेकिन उसके बाद एक सुनियोजित और निर्धारित क्रम में जिस तरह भागवत-कथा के आयोजन के नाम पर भावनात्मक शोषण और पैसे की लूट-खसोट का सिलसिला चला, उसका रोचक वर्णन और विवरण सुषमा जी ने दिया है, वह उनकी अनुपम कहानी-कला का का एक बेहतर उदाहरण बन पड़ा है।

हमारे सामान्य जीवन में आम तौर पर स्थान पाने वाली छोटी-छोटी घटनाओं से सामाजिक विषमताओं और विद्रूपों पर गहरी चोट कर सकने की मारक क्षमता सुषमा जी की अधिकांश कहानियों में शिद्दत से पाई जाती है। अपने इस शिल्प की राह पर चलते वे किसी कृत्रिम क्रांतिकारिता या भावुक आदर्शवाद का अनुसरण नहीं करतीं बल्कि भारतीय- जीवन के स्थायी मूल्य और उन पर आश्रित प्रणाली और परम्पराओं का उद्बोधन सौजन्यता तथा सौमनस्यता के साथ देती हुईं कुछ बड़ी बात कहती हैं जो उनके लेखकीय उद्देश्यों के मूल में महत्ता के साथ निबद्ध है।

यह हमारे साहित्य का दुर्भाग्य है कि सामान्य भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में नित्य घटने वाले प्रसंगों में समाज को अनेक विरोधाभासों, विडम्बनाओं और विरूपों से पहुँचाई जा रही क्षति को रेखांकित करने वाली कहानियों और समानकर्मी रचनाओं को दोयम दर्जे का लेखन माना जाकर उन्हें वह महत्व नहीं दिया जाता है जो आज के भारत की अहम जरूरत है ताकि वह मध्यकालीन समय के भयावह घटाटोप से निकल कर अपनी उस जीवन-दृष्टि को पुनः अंगीकार कर सके जिस कारण विश्व में इस देश को कभी गौरवशाली आदरणीय स्थान मिल सका था और जिस पर हम आज भी नाज कर पाते हैं।

इस बात से कभी इन्कार नहीं किया जा सकता है कि पश्चिम से प्राप्त ज्ञान ने हमें बहुत कुछ सिखाया है, हमने बहुत ज्यादा सीखा भी है और आगे भी यह जरूरत बनी रह सकती है। टेक्नालॉजी, मेडीकल और अन्य विशिष्ट क्षेत्रों में उनके अध्ययन, अनुसंधान और ज्ञान के उपयोग से हमें अपनी जनता को विविध प्रकार से लाभान्वित करना आवश्यक है जैसाकि चीन ने किया लेकिन पश्चिमी संस्कृति को आमूलचूल अपनाना हमारे विस्तृत हितों में नहीं है क्योंकि हमारी भौगोलिक स्थितियाँ, इतिहास के सबक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ, भाषाओं की विविधता, परम्पराएँ, आवश्यकताएँ बिलकुल अलग और भिन्न हैं। इन महत्वपूर्ण मुद्दों को नजरअंदाज कर अगर केवल नकल को ही प्रश्रय दिया जाना एकमात्र उपाय समझा जाता है तो हम विचार करने की अपनी मौलिकता और अब तक अर्जित बहुमूल्य ज्ञान को सायास ही नष्ट होने देंगे जिससे हाथ धोना सिवाय विनाश और पछतावे के अलावा और कुछ हासिल नहीं करायेगा। एक बड़ी कीमत चुकाने से हर हाल में बचना होगा।

लेकिन यह देखा जा रहा है कि आज के युवा लेखक बल्कि बीच की पीढ़ी के मूर्धन्य साहित्यकारों द्वारा भी कुछ नया, अनोखा और अधुनातन लिखने की होड़ में या बेहतर कहिए जोश में, देश की जागृत वर्तमान और भीषण समस्याओं के स्थान पर उन स्थितियों और समस्याओं को वरीयता और प्रमुखता दी जा रही है जो दो भयानक महायुद्धों के बाद पश्चिमी संसार में व्याप्त विभीषिका, बेचैनी, विक्षोभ और विषाद के फलस्वरूप उत्तर-आधुनिकता और पोस्ट-टुथ के सिद्धांतों, व्यवहार और आचरण के रूप में आधुनिक मनीषियों को प्रभावित कर रहा है।

इस बात में भी कोई शक नहीं है कि विश्व में घट रही घटनाओं और स्थितियों का इस देश पर भी बड़ा प्रभाव पड़ रहा है जिससे अछूता रह पाना संभव नहीं है क्योंकि इस ग्लोबल संसार के हम भी महत्वपूर्ण और अविछिन्न अंग हैं लेकिन व्यावहारिक तर्क का तकाजा है कि हमें पहले अपनी अनिवार्य और त्रासद बन चुकी और बन रही कठिन समस्याओं से मुक्ति पाना जरूरी है।

जिस देश में बहुसंख्य गरीब जनता शिक्षा तथा स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं से वंचित है, रोटी और बेरोजगारी की कठनाईयों में मुब्तिला है, अनेकानेक सामाजिक बुराईयों और धार्मिक अंधविश्वासों से ग्रस्त होकर शोषण का शिकार है, वहाँ उत्तर आधुनिकता और उत्तर-सत्य के वायवी प्रश्नों से जूझना उस साहित्यकार को शोभा नहीं देता जो अपने सामाजिक सरोकारों के प्रति चेतन और प्रतिबद्ध है। तुलसीदास और भक्तिकालीन कवियों ने देश और काल के अनुरूप अपने दायित्वों को समझा और अपनी रचनाओं के केन्द्र में रखकर जनधर्म का पालन किया। अपने इतिहास से हम इतना सबक तो ले ही सकते हैं।

इसलिए ही यह कहने का मन बनता है कि देश के स्वरूप में स्थायी अभिशापों और लगातार हानिकारक अवरोधों से अपनी जमीन और अपने आकाश को साफ और स्वस्थ बनाना हमारी प्राथमिकताएँ हैं जिसके तहत समाज की कुरीतियों, रूढ़ियों, विसंगतियों और गैरबराबरी के खिलाफ सख्त और व्यापक प्रतिरोध इस मुहिम का अहम हिस्सा होना चाहिए। इसके लिए बिना किसी धर्म, जाति, वर्ग और अन्य ऐसे किन्ही समानधर्मा कारकों का लिहाज किए, एक नये समय और समाज का निर्माण करना श्रेयस्कर होगा, इस उपक्रम में भारतीय संस्कृति के मूल दर्शन और पश्चिम के धारण-योग्य आधुनिक विचारों का एक समन्वित स्वरूप अपनाना होगा जो ना तो मानव-विरोधी हो और ना ही प्रकृति के विरूद्ध, तभी हम अपनी तमन्ना के मुताबिक एक आधुनिक राष्ट्र के रूप में सम्मानित होने की महत्वाकांक्षा पा सकते हैं।

सुषमा जी अपनी इस लेखकीय प्रतिबद्धता को बखूबी समझती हैं, इसलिए ऐसी उल्लेखनीय और प्रासंगिक रचनाएँ हमें निरन्तर दे पाती हैं। वे प्रणाम योग्य हैं।

मुकेश वर्मा
मोबाइलः 94250-14166

परलोक सुधारने के लिये

सुषमा मुनीन्द्र

जब से अम्माँ के हृदय के वाल्व खराब हुये हैं, चिकित्सकों ने शल्य चिकित्सा का सुझाव दिया है, वानप्रस्थ सम्पन्न कर रही अम्माँ को परलोक की चिंता सताने लगी है। बाबूजी बिना तीरथ-बरत किये, भागवत, बाल्मीकि सुने परलोक वासी हुये, यदि इसी तरह वे चली गईं तो परलोक न सुधरेगा। खूब सोच-विचार कर कहने लगीं -

''भागवत सुनना है।''

बड़े पुत्र यज्ञ दत्त को लगा ऐसी अनोखी बात अम्माँ ने कभी नहीं की ''अम्माँ सर्जरी होना है। आराम करो। तुम भागवत की साध लिये बैठी हो।''

''कुछ धरम-करम नहीं किया। भगवान को का मुँह दिखायेंगे ?''

छोटे पुत्र रूद्र नाथ ने उनका हौसला तोड़ा ''जो पैसा भागवत सुनने में खर्च करोगी, उससे किसी गरीब को पढ़ा दो। यही धरम-करम है।''

''रूद्र हम भागवत सुनेंगे।''

लड़के समझ गये, अम्माँ हठ न छोड़ेगी। कुल-पंडित महावीर जी को बुलाया गया। महावीर पंडितजी पुलकित होकर आये -

''मेरे फुफेरे भाई बड़े विधि-विधान से भागवत बाँचते हैं। ज्ञानी आदमी हैं। उनके पास बहुत बड़ी मंडली है। दूर-दूर से आसामी उन्हें बुलाने आते हैं। मैं उनसे बात कर आपको सूचित करूँगा।''

रूद्र ने पूँछा ''पैसा कितना लेंगे ?''

''वैसे तो स्वामी जी इक्यावन हजार से नीचे हामी नहीं भरते पर यह घर की बात है। मैं उन्हें इकतीस हजार रूपये मैं तैयार कर लूँगा। ईश्वर की कृपा रही तो कार्य सिद्ध होगा। मैं आयोजन में रहूँगा ही। सब सम्भाल लूँगा।''

अम्माँ ने मोहर लगा दी ''पंडित जी आप स्वामी जी से बात करो।''

''बहुत व्यस्त रहते हैं। आज ही कॉल कर पूँछता हूँ कब समय निकाल पायेंगे।''

बात कर पंडित जी चौथे दिन अम्माँ के पास आये।

''स्वामी जी, मैं में समय निकाल रहे हैं।''

अम्माँ हुलहुला गई ''पंडित जी तैयारी आपको ही देखनी है।''

''पूरी जिम्मेदारी मेरी। स्वामीजी ने आयोजन में लगने वाली जो सामग्री बताई है, मैं लिख लाया हूँ।''

पंडित जी ने सूची यज्ञ दत्त को पकड़ा दी। प्रचुर सामग्री। रूद्र के मुख पर तनाव -

''पंडित जी यह तो लम्बा खर्च है।''

पंडित जी ने खण्डन किया ''धर्म-कर्म में पैसे का नहीं भावना का महत्व होता है। आप पर भगवान की कृपा है। आयोजन कर डालिये।''

अम्माँ ने एक बार फिर स्पष्ट कर लेना चाहा ''स्वामीजी संकल्प राशि में कितना लेंगे ?

''बताया न इक्यावन से कम नहीं लेंगे पर मैंने इकतीस हजार की बात कर ली है। आप निश्चिन्त रहें।''

घर में व्यस्तता का वातावरण बन गया। सामग्री खरीदी जाने लगी। कार्ड छप गये। नातेदारों-परिचितों-बन्धु-बान्धवों को भेजे गये। घर के बाहर चौगान में यज्ञशाला का निर्माण हुआ। लाल पताका फहराई गई कि लोगों को सूचना मिल जाये, यहाँ भागवत हो रही है। ठीक दो दिन पहले स्वामीजी ने यज्ञ दत्त के सेल फोन पर बात की ''घर में भीड़-भाड़ रहेगी। हमारे नीति-नियमों में व्यवधान पहुँचेगा। हमारे व हमारे शिष्यों के लिये अच्छे होटेल में तीन कमरे बुक करा दें। कुकिंग गैस और बर्तनों की व्यवस्था भी। हमारा भोजन हमारा शिष्य बनाता है।''

यज्ञ दत्त के लिये यह बहुत अलग और नया अनुभव था। स्वामी जी की बात अम्माँ से बताई -

''स्वामी जी के लिये अच्छे होटेल में तीन कमरे बुक करने हैं। आजकल के आधुनिक पंडित-पुरोहित विलासी हो गये हैं। मोबाइल रखते हैं, ए0सी0 गाड़ी में चलते हैं, फार्म हाउस में रहते हैं, तर माल खाते हैं, रेशम पहनते हैं। अम्माँ पुरोहिताई अब व्यापार हो गई है।''

धर्म की निंदा सुन अम्माँ निठाल हुई ''संकल्प किया है तो खुशी से पूरा करो यज्ञ। धरम-करम पछताते हुये करो तो सिद्धि नहीं मिलती है।''

विचित्र बात है। आज सबसे अधिक ठगी धर्म के नाम पर हो रही है, जानते हुये भी लोग भावनात्मक कमजोरी, धर्मभीरूता, सामाजिक भय के कारण धर्म को पूरी तरह नहीं नकार पाते।

प्रातः दस बजे पूजा का मुहूर्त। मुहूर्त विचारा जाता है पर मुहूर्त पर काम कभी आरंभ नहीं होता। मुहूर्त बीत जाने पर स्वामीजी अपनी मार्शल से तीन युवा शिष्यों के साथ पधारे। इनमें लाहिड़ी मार्शल चलाता और जाप करता है। ब्रम्हचारी भोजन बनाता और जाप करता है। परमानंद, स्वामीजी के साथ भागवत बाँचता है। तर माल खाने वाले धवल वस्त्रों में दिपदिपा रहे स्वामीजी के अरूण मुख पर ऐसी तरूणाई झलक रही थी कि वास्तविक आयु का पता लगाना कठिन था। घंटा, घड़ियाल, कलश, आरती से स्वामी जी का स्वागत हुआ। भागवत पुराण का संकल्प चूँकि अम्माँ ने लिया है, लाल वस्त्र में लिपटी भागवत, मार्शल से निकाल कर सामूहिक मन्त्रोच्चार के साथ अम्माँ के सिर पर रखी गई। भागवत शिरोधार्य कर अम्माँ यज्ञशाला की ओर चलीं। मार्शल से तबला, हारमोनियम, सिंथेसाइजर आदि वाद्य उतारे गये। स्वामीजी की नजर प्रवेश द्वार पर पड़ी। ठिठक कर बोले ''यज्ञजी हमने कहलाया था हमारे नाम का बैनर बनवा कर प्रवेश द्वार और गली के मुहाने पर लगवा दें। आपने नहीं लगवाया। इस क्षेत्र में हमारे कई भक्त हैं। हम चाहते हैं अधिक से अधिक लोगों तक इस यज्ञ की सूचना पहुँचे। लोग आयें। पुण्य अर्जित करें। कथा का आनंद लें। धर्म का प्रचार-प्रसार ही सृष्टि को विनाश से बचा सकता है।''

''बैनर आज ही लग जायेंगे स्वामी जी।''

सामूहिक मंत्रोच्चार के साथ पूजा आरंभ हुई। अम्माँ ने भागवत पाठ का संकल्प स्वामी जी को सौंपा। विधि-विधान देर तक चला। आरती के उपरांत स्वामी जी माइक पर जोर से बोले ''भगवान कृष्ण की .....।''

''जय .....।''

हर हर महादेव कहते हुये स्वामी जी व शिष्यों ने दोनों हाथ ऊपर उठा

लिये। स्वामी जी ने व्याख्या दी -

''ईश्वर का स्मरण दोनों हाथ ऊपर उठाकर करना चाहिये। इसका अर्थ है स्वयं को ईश्वर के आश्रय पर छोड़ देना। द्रौपदी जब तक एक हाथ से वस्त्र सम्भालती रही, ईश्वर नहीं आये। वस्त्र छोड़ दोनों हाथ ऊपर उठा कर सहायता माँगी, ईश्वर ने उसे आश्रय में ले लिया। उसका चीर बढ़ता गया। मनुष्य स्वयं में कुछ भी नहीं है। ईश्वर उसे संचालित करता है। भगवान को जब भी पुकारें दोनों हाथ ऊपर उठा कर पुकारें। ..... मैं जीवन, जगत, जगदीश से जुड़े संदर्भों की कथा कहूँगा। आप लोगों को नई दृष्टि मिलेगी। संशयों का निवारण होगा। जीवन का समाधान मिलेगा।''

यज्ञशाला में स्वामी जी का प्रभुत्व है। घर के भीतर रिश्तेदारों का प्रपंच। अम्माँ समय पर न दवाई ले पाईं, न खाना खा पाईं, न आराम कर पाईं। पहले ही दिन उन्हें थकान हो गई।

''सात-आठ दिन कैसे बीतेंगे ?''

रूद्र बोला ''भगवान भरोसे।''

अम्माँ की थकान बढ़गई ''रूद्र मजाक न करो।''

रूद्र हँसा ''मेरे पास मजाक करने का वक्त नहीं है लेकिन तुम सोचती हो मजाक कर रहा हूँ। अभी मुझे बैनर लेने जाना है वरना स्वामी जी का चित्त पाठ में नहीं लगेगा।''

द्वार पर लहराते बैनर ने स्वामी जी को गदगद किया। यज्ञ और उसकी पत्नी गोपा ने आरम्भिक पूजा की। पाँच सौ रूपये स्वामी जी को, जाप करने वाले चार जपी लाहिड़ी, ब्रम्हचारी, महावीर पंडित जी और उनके शिष्य सदाचारी को दो सौ इक्यावन रूपये दक्षिणा स्वरूप दिये। आरती हुई तत्पश्चात् चारों जपी, जाप में बैठ गये। स्वामीजी और परमानंद मौन रूप से भागवत बाँचने लगे। प्रत्येक अध्याय की समाप्ति पर स्वामी जी हाथ से संकेत करते और अम्माँ हाथ में लिया हुआ अक्षत पुष्प कलश की जानिब छोड़ देती। अम्माँ ने सुन रखा है, भागवत पाठ कानों तक न पहुँचे तो पुण्य नहीं मिलता। स्वामी जी ने जैसे ही पाठ समाप्त किया, अम्माँ चिंतित होकर बोलीं -

''स्वामी जी आप मौन होकर बाँच रहे हैं। हम सुन नहीं पा रहे हैं। पुन्न कैसे मिलेगा ?''

स्वामी जी के महीन अधरों पर महीन मुस्कुराहट उदित हुई ''मैं यह सब आपके ही निमित्त कर रहा हूँ। पुण्य आपको और आपके प्रिय जनों को ही प्राप्त होगा। मन में शंका न रखें। एक दिन में साठ अध्याय बाँचने पड़ते हैं, जो मैं और परमानंद बाँच रहे हैं। मौन रह कर बाँचने में सुविधा होती है।''

स्वामी जी की आवाज प्रभावशाली और बोलने का तरीका लुभावना है। इस कारण श्रद्धालु अपने प्रश्न, संशय, प्रतिरोध को खुल कर प्रकट नहीं कर पाते। अम्माँ को आश्वस्त कर स्वामीजी ने छोटे से जन समूह पर नजर डाली। सिर्फ निवृत्तमान बूढ़े दिख रहे हैं। स्वामी जी चाहते है अधिक से अधिक लोग आयें। खूब चढ़ोत्री एकत्र हो। दोपहर के भोजन के लिये होटेल जाने से पूर्व उन्होंने यज्ञ दत्त को बुलाया -

''यज्ञ जी जन भागीदारी कम है। विभागीय लोगों, परिचितों, बन्धु-बान्धवों को आमंत्रण भेजा है न ? धार्मिक अनुष्ठान व्यक्तिगत हो या सामाजिक, जन कल्याण के निमित्त किये जाते हैं। हम चाहते हैं अधिक से अधिक लोगों को पुण्य लाभ, आरोग्य लाभ मिले।''

यज्ञ ने जानकारी दी ''आमंत्रण भेजा गया है। लोग आयेंगे।''

''दरअसल हम सार्वजनिक स्थलों पर किये जाने वाले आयोजनों में ही जाते हैं। हजारों की भीड़ होती है। विशाल जन समूह के बीच कथा कहने की आदत है। यहाँ कुछ विचित्र लग रहा है। महावीर पंडित जी का आग्रह रहा इसलिये .....। ऐसा करें हमारी तस्वीर और प्रवचन के सार को रोज स्थानीय अखबारों में छापने के लिये भेजें। यहाँ के सांसद, विधायक, अधिकारियों, तमाम बड़े लोगों से हमारा परिचय है। समाचार पढ़कर ये लोग आयें तो आपकी गरिमा बढ़ेगी। हमको भी अच्छा लगेगा ..... और हाँ, लोकल केबिल वालों को बुलाइये, आकर शूट कर लें .....।''

''ठीक है स्वामी जी।''

स्वामी जी होटेल चले गये। यज्ञ भीतर अम्माँ के पास आया ''अम्माँ, स्वामी जी सुपर चैनल वालों को बुलाना चाहते हैं। भागवत पाठ न हुआ, फिल्म शो हो गया।''

अम्माँ बात को पूरी तरह नहीं समझ सकीं लेकिन बोलीं ''हम अपने संतोख के लिये भागवत सुन रहे हैं। स्वामी जी भीड़ न लगायें।''

''अब तो स्वामी जी जो भी कहें, हमें करना पड़ेगा।''

स्वामी जी ने नित्य की तरह लगभग साढ़े बारह बजे पाठ समाप्त किया। तदुपरांत उपस्थित लोगों से बोले ''सायं चार बजे से कथा और भजन होगा। मैं लीला प्रसंग कहूँगा। अधिक श्रद्धालु आयेंगे तो मैं बड़े मन से प्रसंग कहूँगा। अच्छी उपस्थिति से वातावरण बनता है। भागवत प्रसंग अमृत के समान है। आप सभी आयें। बंधु-बांधवों को लायें।''

मेवा-मिष्ठान, फल-फूल, चढ़ोत्री का पैसा समेट स्वामी जी होटेल चले गये। इधर रूद्र ने चुटकी ली ''स्वामी जी ने पंचामृत प्रसाद में बँटवा दिया। मिठाई, फल समेट ले गये। खाकर बीमार हो गये तो पाठ कौन करेगा ?''

अम्माँ रिसा गईं ''रूद्र स्वामी जी जो करते हैं, करने दो। तुम अपना काम देखो।''

''स्वामी जी मिठाई-फल को प्रसाद में बँटवा दिया करें। हो सकता है अच्छा प्रसाद मिलने के लालच में अधिक लोग आने लगें। स्वामी जी रोज कहते हैं जनता नहीं दिख रही है।''

''रूद्र चुप रहो। हमारी थकान न बढ़ाओ।''

अम्माँ आराम करने लगीं लेकिन चित्त घर-गृहस्थी में उलझा है। दिन भर खाना बनता है फिर भी कम पड़ जाता है। रिश्तेदार लगता है भंडार खाली कर देंगे। कृष्ण मुरारी पार लगाना।

सायं चार बजे कथा प्रसंग प्रारम्भ हुआ। स्वामी जी शुरूआत भजन से किया करते हैं ''हे कृष्ण गोविंद हरे मुरारे .....।'' इस प्रहर महिलाओं की उपस्थिति अपेक्षाकृत ठीक है। स्वामी जी ने सराहना की -

''स्त्रियों की उपस्थिति सिद्ध करती है स्त्रियाँ स्वभावतः धार्मिक और कल्याणी होती है। धर्म को यही लोग जीवित रखे हुये है। पुरूष वर्ग में आस्था का लगभग अभाव रहता है।''

स्त्रियाँ श्रद्धा और भक्ति से भर गईं। स्वामी जी हारमोनियम बजाते हैं, लाहिड़ी सिंथेसाइजर, परमानंद तबला। स्वामी जी और शिष्यों ने कथा वाचन और गायकी से समा बाँध दिया। आरती के थाल में जन समूह ने बढ़-चढ़कर मुद्रा डाली। एक बुजुर्ग ने कहा -

''आनंद आ गया स्वामी जी। आपके दर्शन कर जीवन सफल हो गया।''

स्वामी जी अभिभूत, ''मेरा अपना कुछ नहीं है। सब ईश्वर का है। मैं जो कहता हूँ ईश्वर की प्रेरणा से कहता हूँ। जन कल्याण ही मेरा उद्देश्य बन गया है।''

''जी, जी।''

''नित्य आइये। बंधु-बांधवों को लाइये। धर्म के प्रचार-प्रसार में सभी को लगना है।''

''जी, जी।''

सबके सोने के उपरांत रात को अम्माँ पलकें झपकाती हुई उठीं और बर्तन ढूँढ़ने-ठठोरने लगीं। आँगन में सो रहे रूद्र की नींद धर-पटक से उचट गई।

''अम्माँ, क्या कर रही हो ?''

''कुछ बर्तन नहीं मिल रहे हैं। गुम गये। बहुयें, लड़कियाँ बड़ी लापरवाह हैं।''

सुबह पाठ के लिये बैठते हुये स्वामी जी ने अम्माँ से पूँछा ''तबियत हल्की लगती है न ? नींद अच्छी आई ?''

विवरण रूद्र ने दिया ''रात भर बर्तन सहेजती रहीं। अच्छी नींद कैसे आती ?''

''बर्तन ? माया-मोह छोड़िये। रूपिया-पैसा व्यर्थ है।''

रूद्र का जी चाहा कहे - स्वामी जी माया-मोह, रूपिया-पैसा व्यर्थ है तो आप इस व्यर्थता से मुक्त क्यों नहीं हो जाते ? लोक निंदा के भय से न कह, यह कहा ''बर्तन ढूँढ़ेगी और बीमार पड़ेंगी।''

''अरे, अरे। आप जान लीजिये भाई जी आपकी अम्माँ बीमार नहीं पड़ेंगी। कृष्ण लाला रोग-व्याधि, विघ्न-बाधा हर लेते हैं। आप स्वस्थ महसूस कर रही हैं न ?''

स्वामी जी की प्रभावशाली आवाज के प्रभाव में अम्माँ, ''हाँ।''

''इस महायज्ञ से आप पूरी तरह स्वस्थ हो जायेंगी। दवाई की जरूरत नहीं पड़ेगी। हृदय में ईश्वर के प्रति विश्वास और निवेदन होना चाहिये ..... अच्छा सुनिये कल यशोदा के लाला का जन्म होगा। धूम-धाम से होगा। बैण्ड बाजा बुलाना है। वैसे हमारे पास मण्डली और गाने-बजाने का पूरा प्रबंध है पर यह पारिवारिक आयोजन है। स्थान का अभाव है इसलिये हम मण्डली नहीं लाये हैं। सार्वजनिक आयोजनों में मण्डली ले जाते हैं। देर रात तक कृष्ण लीला चलती है। वह भव्यता यहाँ न हो सकेगी फिर भी ऐसा भावना प्रधान वातावरण बनाना है कि लोग याद रखें इस घर में भागवत हुई थी। जन्म के लिये नई साड़ी, भगवान की पोशाक, आभूषण, मुकुट, सिंहासन और जो चाहिये हम उसकी लिस्ट बना लाये हैं। आज ही सामग्री मँगा लीजिये।''

मँहगी - लम्बी सूची। शाम को सामग्री खरीदने के लिये यज्ञ और गोपा बाजार के लिये निकले। अम्माँ ने दस हजार रूपये दिये ''हो जायेगा न ?''

यज्ञ ने विचित्र चेहरा बनाया ''क्या पता। स्वामी जी पाठ कम नौटंकी अधिक कर रहे हैं।''

परलोक की चिंता सताने वाली उम्र में आ पहुँची बुआ ने भर्त्सना की ''मैंने ऐसे जज्ञकर्ता नहीं देखे जो भगवान के लिये खर्च करने में पछताते हैं। खर्च का सोच न करो। मदन गोपाल सौ गुना देंगे। भगवान का काम कर आज तक कोई कंगाल नहीं हुआ। स्वामी जी की वाणी में सरस्वती है। ऐसी मधुर कथा कहते हैं कि कृष्ण की झाँकी दिखा देते हैं।''

यज्ञ ने विपरीत बोलना जारी रखा ''मुझे तो एक श्लोक कंठस्थ हो गया है। दक्षिणाय समर्पयामि। हर बात में दक्षिणा दो।''

अम्माँ निसहाय हुई। पातकी यज्ञ दत्त नकचढ़ी ननद को मजाक उड़ाने का मौका दे रहा है, साथ ही भगवान को कुपित कर रहा है।

''यज्ञ, थोड़ा चुप रहो न। होटल-सनीमा में पैसा फूँक देते हो। दच्छिना देते उदासी आती है।''

कृष्ण जन्म चमत्कारिक भाव में हुआ।

नई साड़ी की आड़ बना कर कृष्ण की मूर्ति को सूप में रखा गया। वस्त्राभूषण से अलंकृत मूर्ति को नवीन सिंहासन पर विराजमान किया गया। बैंड बाजे की फिल्मी धुन पर स्त्रियाँ खूब नाचीं। मोहल्ले की चार-छः महिलाओं ने साड़ी-ब्लाउज-पेटीकोट चढ़ाया। स्वामी जी तेज स्वर में बोले -

''श्रद्धा भाव महिलाओं में अधिक होता है। सामर्थ्य से अधिक दान-पुण्य करने की इच्छा रखती हैं। पुरूष इन बातों को वैज्ञानिक तर्कों से गलत ठहराते हैं या यश कामना के लिये दान देते हैं।''

साड़ी चढ़ाने वाली स्त्रियाँ गौरव पा गईं। साड़ी न चढ़ाने जैसी त्रुटि के मद्दे-नजर बाकी लोग लजा गये। लाज कम करने के लिये संकल्प से अधिक मुद्रा चढ़ाई। सुपर चैनल बालों ने आकर कृष्ण जन्म को सफल बना दिया। स्वामी जी ने आकांक्षा कही -

''अच्छा कवरेज मिलना चाहिये।''

''जी, स्वामी जी।''

चैनल वाले चले गये। गदगद स्वामी जी जन समूह से सम्बोधित हुये ''जन्म उत्सव का आप लोगों ने आनंद लिया। कल कृष्ण-रूक्मणी विवाह है। कोई भी खाली हाथ न आये। जो खाली हाथ आयेगा, खाली हाथ रह जायेगा।''

जन समूह को सुझाव देकर स्वामी जी भीतर आँगन में आकर विराज गये। घर के लोग उन्हें घेर कर भूमि पर बैठे। स्वामी जी ने यज्ञ से मंत्रणा की -

''कृष्ण - रूक्मणी विवाह होगा। आपकी अम्माँ तो पैर पखारेंगी ही। आपको, रूद्र को सपत्नीक और भी जो लोग चाहें, पैर पखारना है। गुरू मंत्र के बिना अनुष्ठान का फल नहीं मिलता। आप लोगों ने गुरू दीक्षा ले ली है ?''

''अखाड़े के एक नागा साधू से ली है।''

यज्ञ की बात सुन स्वामी जी मलिन पड़ गये ''गुरू दीक्षा नागाओं से नहीं, गृहस्थ से लेनी चाहिये। गुरू सोच-समझ कर बनाना चाहिये। हमसे कई लोगों ने दीक्षा ली है। खैर .....काम की बात करें। ये जो दो

नन्हीं बच्चियाँ (यज्ञ की सबसे छोटी बहन मुक्ता की पुत्रियाँ) हैं, इन्हें कृष्ण-रूक्मणी बनायेंगे। पोशाक, बनाव-सिंगार की सामग्री हमारे पास है। पैर पखारने के लिये पाँच बड़े बर्तन, स्वर्ण, चाँदी, सुहाग सामग्री चाहिये। बड़े लोगों का घर है। आयोजन प्रतिष्ठा के अनुरूप होना चाहिये।''

कृष्ण-रूक्मणी विवाह की झाँकी मनोहारी थी।

पीले रेशमी वस्त्र, नकली घुँघराले बाल, मोर पंख, माला आदि धारण किये दोनों बच्चियों को आसन पर बैठाया गया। अम्माँ ने पाँच बड़े बर्तन और चाँदी के सुंदर लोटे से पैर पखारे। यज्ञ और रूद्र ने अच्छा खर्च कर सपत्नीक पैर पखारे। पैर पखारने का कार्यक्रम देर तक चला। सभी को परलोक सुधारना था। एकत्र सामग्री को स्वामी जी के शिष्य दक्षता के साथ समेटते जा रहे थे। स्वामी जी आरती के उपरांत बोले -

''कल कृष्ण - सुदामा भेंट होगी। कोई खाली हाथ न आये। गरीब सुदामा भी सखा से मिलने खाली हाथ नहीं गये थे।''

बार-बार यही सुनकर लोगों का विश्वास, आस्था, श्रद्धा खण्डित हो रही थी लेकिन स्वामी जी रोज दोहराते थे - खाली हाथ न आयें।

.....भागवत पाठ पूर्ण होने पर सायं काल हवन हुआ। दूसरे दिन भण्डारा। अगले दिन स्वामी जी की विदाई। अम्माँ ने महावीर पंडित को भीतर बुलाया -

''स्वामी जी को इकतीस हजार और शिष्यों को दो-दो हजार दिये देते हैं। इन लोगों को विदा करें फिर आपका हिसाब होगा।''

''मेरा और सदाचारी का हिसाब होता रहेगा। स्वामी जी के निमित्त इकतीस हजार उचित है। सोने की अँगूठी दे ही रही हैं।'' पंडित जी, यज्ञ, रूद्र, अम्मा, स्वामी जी के पास यज्ञशाला में आये। अनुमान से कम राशि देख स्वामी जी महाजनी पर उतर आये ''इक्यावन हजार से कम नहीं लेंगे। वह भी इसलिये कि महावीर पंडित जी का आग्रह रहा। वैसे हम बड़े-बड़े आयोजनों में ही जाते हैं। जहाँ संकल्प राशि के अलावा पचासों हजार चढ़ोत्री का मिल जाता है।''

यज्ञ ने निवेदन किया '' सामूहिक और व्यक्तिगत आयोजन में अंतर होता है स्वामी जी। वैसे भी अनुमान से अधिक खर्च हो गया है।''

''यज्ञ जी आयोजन व्यक्तिगत है। इससे हमारी मेहनत कम नहीं हो जाती। न ही विधि-विधान संक्षिप्त हो जाते हैं।''

स्वामी जी ने नम्रता त्यागी। यज्ञकर्ताओं ने श्रद्धा।

रूद्र बोला ''इतनी चढ़ोत्री आई। हम लोगों ने भी चढ़ावे में कमी नहीं की। सब मिला कर आपके इक्यावन हजार हो जाते हैं।''

स्वामी जी ने रूद्र को देखा, जैसे तुच्छ को देख रहे हैं ''आयोजन सानंद वातावरण में सम्पन्न हुआ है। आप लोग विघ्न न डाल, संतोष बनाये रखें। यही मनुष्य की पूँजी है।''

रूद्र का जी चाहा कहे - हमारी पूँजी संतोष, आपकी रूपिया-पैसा। उसने स्वामी जी से कुछ कहना व्यर्थ जान महावीर पंडित जी से कहा ''पंडित जी आप समझाइये।''

पंडित जी क्या समझायें ? स्वामी जी को इक्यावन हजार का वचन दे अम्माँ को इकतीस बताया कि किसी प्रकार काम शुरू हो। लगे हाथों वे भी कुछ कमाई कर लें। फिर स्वामी जी की माधुरी से प्रभावित हो अम्माँ स्वतः अधिक देने का संकल्प बना लेंगी। पंडित जी ने स्वामी जी को मनाने की थोड़ी-बहुत औपचारिकता की। स्वामी जी अडिग। देर तक मोल भाव हुआ। अम्माँ अचानक उठ कर चल दीं ''यज्ञ, आओ हमारे साथ।''

अम्माँ ने अल्मारी से बीस हजार रूपये निकाले ''धर्म-कर्म पैसे का खेल हो गया है। यज्ञ, बीस हजार स्वामी जी को दो और विदा करो। अँगूठी हम न देंगे।''

इक्यावन हजार ग्रहण कर स्वामी जी ने अपनी मुख मुद्रा सम्भाली -

''जाते-जाते आप लोगों ने मन मलिन कर दिया। कुछ स्वर्ण भी चाहिये। स्वर्ण दान के बिना यज्ञ पूरा नहीं होता।''

''हमारा बजट बिगड़ गया है स्वामी जी। ये बीस हजार अँगूठी खरीदने के लिये ही रखे थे। अँगूठी अब नहीं दे पायेंगे।'' कूट उत्तर देकर अम्मा ने उपस्थित जनों को चौंका दिया।

इस बीच मार्शल में अन्न, वस्त्र, बर्तन बहुत कुछ रखा जा चुका था। स्वामी जी अपना असंतोष लिये मार्शल में जा बैठे। महावीर पंडित जी ने भी मार्शल से प्रस्थान किया।

दूसरे दिन महावीर पंडित जी अपना और सदाचारी का हिसाब लेने आये। रूद्र ने विरोध दिखाया -

''पंडित जी आपके माध्यम से सब तय हुआ था। वे लूट कर चले गये।''

पंडित जी ने गर्दन को जोर से झटका ''मैं उनके आचरण पर हैरान हूँ। ज्ञानी हैं पर बड़े लोभी हैं। आप लोगों ने देखा ही है मैं और सदाचारी भी जाप में बैठते थे। चढ़ोत्री में हमारा भी हिसाब था। वे पूरा समेट ले गये। माँगने पर भी न दिया। आपसे बता दूँ, उन्होंने भागवत के पूरे अध्याय नहीं बाँचे। इतने कम समय में पूरे अध्याय बाँचे ही नहीं जा सकते। नौटंकी दिखाने में लगे रहे। पुरोहित कम मंडली वाले अधिक लग रहे थे।''

पंडित जी की व्यग्रता कम न हो रही थी। सोचते थे फायदे में रहेंगे। अम्माँ काफी कुछ देंगी ही। स्वामी जी भी देंगे। स्वामी जी ने महाजनी दिखा दी।

अम्माँ सदमे में ''भागवत पाठ पूरा नहीं हुआ ?''

पंडित जी की व्यग्र मुद्रा ''इसके भागी वही बनेंगे। आपने उन्हें संकल्प दिया तो उन्हें ईमानदारी से अपना काम करना चाहिये था। अब यही हो गया है। धर्म?-कर्म में आडम्बर आ गया है। तभी न स्वामी जी फार्म हाउस के मालिक हैं। नेताओं-मंत्रियों तक उनकी पहुँच है। सोना न मिलने से बुरा-भला कह रहे थे।''

अनिष्ट की आशंका से अम्माँ पीली पड़ गईं ''सराप तो न दे देंगे ?''

''हो गया अम्माँ। मन का संतोष भी कुछ होता है। तुमने भागवत सुन ली, बाकी स्वामी जी जानें।'' यह कह कर यज्ञ सांत्वना दे रहा है अथवा सता रहा है अम्माँ न समझ पाईं। यह जरूर लगा परलोक सुधारने के लिये उन्होंने यह जो खर्चीला आयोजन कर डाला है इसकी न आवश्यकता थी न उपयोगिता। स

जीवन विहार अपार्टमेन्ट, फ्लैट नं0 7, द्वितीय तल,
महेश्वरी स्वीट्स के पीछे, रीवा रोड, सतना (म.प्र.)-485001
मोबाइल : 08269895950

मिथिलेश श्रीवास्तव

बच्चों जैसे

मैं मुस्कराना चाहता हूँ
बच्चे नींद में जैसे मुस्कुराते हैं
इस जागती हुई दुनिया से अनजान और बेखौफ
मैं हाथ-पाँव पटकना चाहता हूँ
जैसे बच्चे गुस्से में हाथ पाँव पटकते हैं
मैं रोना चाहता हूँ जैसे बच्चे नींद में रोते हैं
जैसे कि किसी आततायी से उनकी नजरें मिल गयी हैं
मैं डरना चाहता हूँ
बच्चे जैसे डर जाते हैं जरा सी डरावनी आहटों से
बच्चों जैसा कुछ भी करना अब मुमकिन नहीं लगता
बच्चे जब बड़े होंगे और यह दुनिया नहीं बदली
वे भी मेरी तरह बेबस और लाचार होंगे

फूहड़ मकान

वह घर खंडहर सा दिखता था
खंडहर नहीं था वह
घर के भीतर घुसने से पहले
सहन दरवाजे पर दस्तक देनी पड़ती थी
कुंडी खड़खड़ानी पड़ती थी
दरवाजा खुलने का इंतजार करना पड़ता था
दीवारों में साबूत खिड़कियाँ थीं
जिनसे साफ हवा नदी को छूकर आती
खिड़कियों से बाहर किसी को पुकारा जा सकता था
रोने की आवाज खिड़की से बाहर जा सकती थी
अक्सर माँ कोठरी के भीतर सुबकती
सहन दरवाजे के किवाड़ों के पीछे से बोलती
वही उसका पर्दा था
कुछ दरवाजे थे जिनमें साँकले थीं जिनमें ताले लग सकते थे
सिटकनियाँ अंदर से लगायी जा सकती थीं
जिन्हें अंदर से ही खोला जा सकता था
रात होते ही चन्द्रमा पूरे आंगन में खेलने लगता
जिन कोठरियों पर छते थीं, ठीक थीं
पानी की बौछार से हमें बचाती हुई
एक विशाल परिवार के लिए विशाल घर का नक्शा
जो किस्तों में ही पूरा हो सकता था
पहली किस्त में पिंजवा लगा सन 1957 में
आजादी के दस साल बाद
खिड़कियाँ और दरवाजे बढ़ई ने बनाये सन 1962 में
आजादी के पंद्रह साल बाद
नींव पूजाई हुई सन 1965 में
आजादी के अठारह साल बाद
सन 1982 आते आते कुछ
कोठरियाँ और उनकी छतें बन गयीं
तबतक पिता गुजर चुके थे
माँ इसी खंडहर को घर कहती रही
और गुजर करती रही सन 2017 तक
एक दिन घर की ईंटें निकलवा ली गयीं
दरवाजे और खिड़कियाँ निकलवा ली गयीं
पिता के नक्शे को ध्वस्त कर दिया गया
एक फूहड़ घर बन गया
अंदर से सारे हकदारों के हकों पर कब्जा करते हुए
पिता के अरमानों को कुचलते हुए

बर्फीले कब्र की चाहत

इतनी गर्मी में झुलसने से
मुझे ठंड में ठिठुरना मंजूर है
जब मैं अपने काम में तल्लीन रहता हूँ
पसीने से मेरे कपड़े भींग चुके होते हैं
होंठो पर पपड़ियां जम चुकी होती हैं
मुंह से पानी बोल नहीं पाता हूँ
मैं एक ऐसी आभागी दुनिया का बाशिंदा हो जाता हूँ
जहाँ पूरी दुनिया गैस चबिर सी लगती है
कहीं से कहीं जाओ आराम नहीं मिलता
पानी मिल जाता है आराम नहीं मिलता है
छाया मिल जाती है आराम नहीं मिलता है
लोग होते हैं अजनबी लगते हैं
घर होता है पराया लगता है
दोस्त होते हैं मुझ से ही होड़ लगाते हैं
नदी होती है कुछ दूर जाकर सूख जाती है
इतिहास में कहीं खो जाती है
पसीने से भींगे लोगों का कोई इतिहास नहीं होता
उनका कोई इतिहास नहीं लिखता
मैंने कई बार सोचा
यह दुनिया गैस चैंबर में ही क्यों बदल जाती है
गैस चैंबर में हम उबल जाते हैं, त्वचा छिलके के मानिंद उतर जाती है
माँस और हड्डियाँ आइसक्रीम की तरह पिघल जाती हैं
गैस चैंबर में पूरा का पूरा शरीर एक लाल नदी बन जाता है।
जो कुछ दूर के बाद सूख जाती है जैसे
कि वहां कुछ हुआ ही नहीं हो
एक गैस चैंबर से दूसरे गैस चैंबर की ओर
भागते हुए लोगों का जत्था
सर पर जिंदगी की गठरी और कंधे पर बच्चों को लादे
वे गैस चैंबर की नदी बनना नहीं चाहते
वे अपनी गठरी का संसार बचाना चाहते हैं
वे बच्चों को बचाना चाहते हैं
अपनी औरतों को बचाना चाहते हैं
एक ऐसे घर पहुँचना चाहते जहाँ उन्हें आराम मिले
मैं एक बर्फीले कब्र में दफन होना चाहता हूँ
बर्फ में दबी लाशें उठ खड़ी होती हैं
और गवाह बन जाती हैं स

मुकेश निर्विकार

एक सामाजिक अभिनय

मैं तो देख ही रहा था उसे
एक टक तो नहीं
आखिर लोग क्या कहते
इसलिए कनखियों से

देख वे भी रहे थे
बार-बार उसे
न देखने का बहाना करके

दरअसल, देख तो उसे सभी रहे थे
लेकिन फिर भी झुठला रहे थे
उसको देखना।

कोई एक अन्तर्दीप्त इच्छा थी
नैसर्गिक
सौन्दर्य-दर्शन की
सभी के अंदर
एक ही जैसी
किन्तु धरती पर
सौन्दर्यपान का सामाजिक निषेध था
इसलिए सभी इंसान
अभिनय-दक्ष थे
देखने के
कनखियों से
सौन्दर्य रूपसियों का।

दही जम रही है

दही जम रही है
धीरे-धीरे
आपस में इकट्ठे हो रहे हैं दुग्ध-कण
हिल-मिल रहे हैं परस्पर
स्निग्धता त्याग रहे हैं उत्साही नवअणु
व्यवस्था के खिलाफ
दूध को फाड़कर रहेंगे अंततः।

जमते हुए दूध-कण
छू रहे हैं बर्तन की दीवारों को
कसकर पकड़े
निस्पंद जम गयी दही अंततः।

अभी अपनी एकता पर इठलाये ही थे कि फिर
रई मथने लगी उन्हें
विलगा दिये पृथक-पृथक
चिकनाई पृथक, छाछ पृथक
क्यों हर बार मंथन लिखा है
दूध की स्निग्ध बूंदों की किस्मत में?

कविता मेरे लिए

मेरे लिए कविता
शब्दों में संवेदन समेटना
अमूर्त अहसासों को शब्दों की मूरत में ढालना
निढ़ाल होते हृदय की ढाल बनना है

कविता में
मेरी कैद है,
और मुक्ति भी
दमघोंटू और सुरक्षित माँद दोनों ही

मेरे लिए
जिन्दा रहने की
एक मुकम्मल वजह है कविता

मैं कविता में
साथ-साथ जीता-मरता हूँ।

2/29 डी.एम.कॉलोनी, बुलंद शहर (उ.प्र.)203001

कुंअर उदयसिंह 'अनुज' के गीत

//एक//

झुम रही तुम मेरे भीतर
जैसे गेहूँ की बाली।

सरसों खिलती है खेतों में,
पर तुम मेरे अंतर में।
बहती फागुन आहट जैसी,
मन के जंतर-मंतर में।
मेड़ खड़ा यह मन का बच्चा
कूद-कूद देता ताली।

चितवन के वासंती कोने,
लुकते-छिपते ताक रहे।
बहुत दूर है फिर भी देखो,
भीतर तक है झाँक रहे।
सावधान हैं चोर सरीखे,
देख न ले कोई माली।
उतरा कोरे कागज़ पर यह,
नये गीत का चाव यहाँ।

ज्यों गुलाब से निथर इत्र-सा,
महके मन का भाव यहाँ।
जैसे परती धरती जोते,
नया-नया कोई हाली।

//दो//

कभी रहा था जो मनभावन,
बीत गया वह मौसम।

बादल के पाँवों में चुभती,
घाटी यह पथरीली।
नहीं रहे अब पेड़ गले मिल,
करता आँखें गीली।
हाँफ-हाँफ चलता सागर से,
राहों में निकले दम।

तपते सूरज ने अब तोड़े,
हिमनद जमे-जमाये।
युगों-युगों वरदान बने जो,
अब संकट कहलाये।
टूट गईं सब मर्यादाएँ,
यों बहे बाढ़में हम।

कुदरत के सीने पर चलता
सुविधाभोगी आरा।
स्वार्थ भावना लील रही है,
मन-संवेदन सारा।
स्वयं भरे विष अपने जीवन,
और करें फिर मातम।
आँख तरेरे कुदरत हम पर,
ज्यों क्रोधित दुर्वासा।
अहंकार में सदा मनुज का,
पड़ता उलटा पासा।
आपस में हम दोष मढ़रहे,
मन में पल रहे अहम।
जिस डाली पर बैठा, काटे
उसे ही लकड़हारा।
तय है उसका नीचे गिरना,
क्या समझे बैचारा
और टाँग जब टूटी बोला,
हे भगवान को रहम।

ठिकाना पोस्ट - धरगाँव (मण्डलेश्वर)
जिला-खरगोन - 451-221
मो.96694-07634

कहानी

पुरस्कार

रूपसिंह चन्देल

मैं माह के दूसरे सप्ताह का एक दिन। हवा सुबह से ही गर्म थी। चार दिन पहले ही वह शहर के एक राष्ट्रीय अखबार के एक्जूटिव एडिटर बनकर आए थे। चार दिन ऑफिस को समझने, अधीनस्थों से परिचित होने और अपने को व्यवस्थित होने में उनका समय व्यतीत हुआ। पांचवें दिन वह दस बजे कार्यालय पहुंच गए। जानते थे कि उस समय कार्यालय में चपरासी, रिसेप्शन और डेस्क पर कुछ ही लोग होंगे। वह पहले सम्पादक थे जो उतनी सुबह कार्यालय पहुंचे थे। उनके पहुंचते ही उपस्थित लोग चौकन्ने हो उठे। काना-फूसी हुई और सभी सिर झुकाकर काम करने का आभास देने लगे। कुछ कर भी रहे थे। ये वे लोग थे जिन्हें सुबह छः बजे पहुंचना होता। शेष बारह बजे तक पहुंचते और रात नौ-दस बजे तक पान चभुलाते,सिगरेट और चाय पीते काम करते। डेस्क की ओर नजर डालते मनीष पंडित अपने चबिर में दाखिल हुए। गैलरी में उन्हें आता देखकर उनके चपरासी ने पहले ही चबिर का दरवाजा खोल दिया था।

मेज पर उस दिन के हिन्दी-अंग्रेजी समाचार पत्र रखे हुए थे। चबिर में उनके प्रवेश करते ही चपरासी ने लपककर पंखा खोल दिया। ए।सी। पहले से ही चल रहा था। दो मिनट तक मनीष पंडित कुर्सी के पास खड़े रहे, फिर सिगरेट सुलगाई और खिड़की के पास जा खड़े हुए। उनका चबिर दूसरी मंजिल पर था। उन्होंने खिड़की का पर्दा हटाया और बाहर सड़कर पर दौड़ते वाहनों और पैदल चलने वालों को देखने लगे। ऑफिस परिसर में गेट के दोनों ओर और कार्यालय से पचीस मीटर दूर सड़क के दोनों ओर अमलतास के पेड़ थे। पीले और सुनहरे फूलों से लदे उन पेड़ों ने मनीष पंडित का मन मोह लिया। वह अपलक उन्हें देखने लगे। ऑफिस गेट के बाहर उसकी दीवार से लगा हुआ एक देसी आम का पेड़ भी था, जिसमें कच्चे छोटे आम लटके हुए थे। किसी-किसी डाल में बौर भी दिख रही थीं। तभी उन्हें कोयल की आवाज सुनाई दी, जो एक डाल पर पत्तों के बीच छुपी बैठी थी।

'बहुत अद्भुत और मोहक दृश्य है' मनीष पंडित ने सोचा। सिगरेट की राख झाड़ने के लिए मेज तक गए और लौटकर फिर बाहर का दृश्य देखने लगे। 'मुम्बई में मेरा कमरा चौदहवीं मंजिल पर था। चारों ओर ऊंचीं इमारतें। प्रकृति का यह सौन्दर्य वहां दुर्लभ था। कितना भाग्यशाली हूं कि यहां के लिए चुना गया। भले ही वेतन में कोई बड़ा अंतर नहीं लेकिन प्रभारी सम्पादक होने का सुख क्या कम है!' सिगरेट समाप्त होने को थी। इस बार चिन्तन प्रक्रिया में उसकी राख चैंबर में बिछी कार्पेट पर गिर गयी थी। सिगरेट को एश ट्रे में डालकर वह पुनः खिड़की के पास आ खड़े हुए।

मनीष पंडित ने पत्रकारिता का अपना करियर दिल्ली की एक मासिक पत्रिका वनिता से प्रारंभ किया था। वर्ष में दो-तीन कहानियां लिख लेते जिनके प्रकाशित होने का संकट न था। पत्रकारिता में होने का लाभ लेना उन्हें आता था। वनिता में उप-सम्पादक थे और सम्पादक के कृपापात्र। सम्पादक ने साहित्य देखने और प्रथम निर्णय की जिम्मेदारी उन्हें सपि रखी थी। सम्पादक उनके निर्णय पर भरोसा करते और उनके द्वारा स्वीकृत रचनाओं को प्रकाशित करने की अनुमति देते। मनीष पंडित अपनी इस ताकत को पहचान गए थे और उन दिनों की सभी स्तरीय पत्रिकाओं से जुड़े पत्रकारों को पत्र लिखकर उनकी रचनाएं मंगाते और उन्हें बहुत सम्मान के साथ प्रकाशित करते। घ्सी स्थिति में उनकी एक भी कहानी अप्रकाशित कैसे रह सकती थी। वह पांच फुट पांच इंच लंबे, दुबले-पतले थे। उनके दुबले चेहरे पर दोनों ओर उभरी हड्डियां, बड़ी आंखें, मोटी भहिं और थिरकती चाल मित्रो में चर्चा का विषय थी। प्रत्येक शनिवार की शाम वह प्रेस क्लब में दूसरी पत्रिकाओं के कथाकार मित्रो के साथ व्यतीत करते। पीने में कोई मित्र उनकी बराबरी नहीं कर सकता था। प्रेस क्लब उनका आधा वेतन साफ करवा लेता। कई बार रात बिना टिकट बस की यात्रा करते या किसी मित्र से बस किराया उधार लेते। बस में सो जाते और नंद नगरी टर्मिनल पहुंच जाते। बस खाली होने पर बस कंडक्टर उन्हें जगाता। वहां से रात्रिसेवा की बस पकड़कर भजनपुरा पहुंचते, जहां अपने बड़े भाई-भाभी के साथ किराए के मकान में वह रहते थे। भाई उनसे पांच वर्ष बड़ा था।

उन दिनों वह इतना अनाकर्षक थे कि उनकी शादी के लिए आने वाला उनसे मिलने के बाद दोबारा लौटकर नहीं आता था। लेकिन उम्र की अपनी मांग होती है और उस मांग को वह कब तक ठुकराते। भाभी का सौन्दर्य उन्हें बरबस अपनी ओर खींचता लेकिन भाई का डर----- एक दिन मांग के समक्ष डर परास्त हो गया। शनिवार का दिन था। वह प्रेस क्लब से रात बारह बजे लौटे। उनके इस प्रकार लौटने पर भाई ने कई बार टोका था लेकिन हर बार उन्होंने ऑफिस में काम अधिक होने का बहाना बनाया था, ''कल संडे है---मैटर प्रेस में जाना था।'' लेकिन उस दिन भाई दिल्ली से बाहर था। यह उन्हें जानकारी थी। भाभी ने दरवाजा खोला। भाभी के दरवाजा बंद करते ही वह भाभी पर झपट पड़े थे। अचानक हुए हमले से वह भौंचक थी। समझ नहीं पा रही थी----तभी उसे उनकी कलाई पकड़ में आ गयी और उसने कलाई में दांत गड़ा दिए। वह चीखते हुए नीचे ढह गए थे। दांत गड़े ही थे, खून नहीं निकला था। भाभी ने दरवाजा खोलकर उन्हें सीढ़ियों से नीचे धकेल दिया था। रात उन्होंने भजनपुरा बस स्टैंड में बितायी। सुबह अपने एक पत्रकार मित्र के घर गए, जो उनके साथ काम करता था और आदर्शनगर में अकेले रहता था। भाई-भाभी के अचानक बाहर चले जाने की बात बतायी और वेतन मिलने तक साथ रहने का अनुरोध किया। वेतन मिलने के बाद उन्होंने आदर्श नगर में ही एक सस्ता कमरा किराए पर लिया। सहयोगियों में काना-फूसी हुई। एक दिन एक सहयोगी, जो यमुना विहार रहता था और उनके भाई के किराए के मकान में जा चुका था उनके भाई से मिलने जा पहुंचा। और भाई ने उनकी दुश्चयास की कहानी उनके उस सहयोगी को बता दी थी। बात वनिता कार्यालय से होती हुई दिल्ली के लेखकों तक पहुंच गयी थी।

साहित्य की दुनिया विचित्र है। घ्सी घटनाओं को लोग रस लेकर एक शहर से दूसरे शहर तक पहुंचाते रहते हैं। बाहर के कुछ लेखकों को भी उनकी उस हरकत की जानकारी हो गयी। उन्होंने प्रेस क्लब जाना छोड़ दिया और शहर छोड़ने के प्रयास में जुट गए। तभी मुम्बई के एक राष्ट्रीय अखबार में वेकेन्सी निकली, उन्होंने आवेदन किया और चुने गए। बेशक उप-सम्पादक के पद पर ही गए, लेकिन वनिता के उप-सम्पादक के रूप में जो वेतन ले रहे थे उससे कुछ अधिक ही वेतन था। अपने साथ काम करने वाली युवती से शादी की जो उनकी ही भांति दुबली-पतली थी और उन्हीं की तरह शादी के लिए देखने आने वालों की उपेक्षा का शिकार थी।

मुम्बई में वह बीस वर्ष रहे और उप से वरिष्ठ उप,सहायक और संयुक्त सम्पादक तक की यात्रा तय की। और अब उसी अखबार के उस नगर के प्रभारी सम्पादक बनाकर उन्हें वहां भेजा गया था। परिवार उन्होंने मुम्बई में ही रखने का निर्णय किया। लेकिन मुम्बई में अपने को स्थापित करने के प्रयासों में मनीष पंडित का लेखन अतीत का विषय बन चुका था। बीस सालों में उन्होंने मात्र दो कहानियां लिखी थीं।

धूप आंखों को चुभने लगी तो कुर्सी पर बैठते हुए उन्होंने चपरासी को बुलाने के लिए घण्टी बजायी। चपरासी उस समय बायीं गदौली में तंबाकू

"किसी की उन्नति को लोग आसानी से पचा नहीं पाते। मैं तो पहली ही मुलाकात में उनसे प्रभावित हो गया। साहित्यिक व्यक्ति हैं। तीन कहानी संग्रह प्रकाशित हैं। 'दैनिक जागृति' के नगर और उसके आसपास प्रसार के लिए हर बृहस्पतिवार को साहित्य के लिए दो पृष्ठ बढ़ाने के लिए उन्होंने आज ही अपने मैनेजमेण्ट से बात की है और उम्मीद है कि जल्दी ही वह प्रारंभ हो जाएगा। तब हमें छपने के कितने अवसर मिलेंगे!"

रखकर दाहिने हाथ की अगूंठे की बगल वाली उंगली से चुनौटी से चूना निकालकर बायीं गदौली में रखने ही जा रहा था कि घण्टी बजी। क्षणभर उसने सोचा कि चूना मिला ले तब जाए। चुनौटी को कुर्ते की जेब के हवाले कर उसने जैसे ही चूना तंबाकू के साथ मिलाने का विचार किया कि तभी घण्टी दोबारा घनघना उठी। उसने चूना सहित तंबाकू पैरों के पास पड़े अखबार के छोटे-से टुकड़े पर रखा और दौड़कर दरवाजा खोल अटेंशन की मुद्रा में खड़ा हो बोला, ''सर''।

''साहित्य सम्पादक आ चुके हों तो भेजो।'' मनीष पंडित ने टाइम्स ऑफ इंडिया पर नजरे झुकाए हुए कहा।

''जी सर!'' चपरासी मुड़ने को हुआ कि उसे रोक बोले, ''उसके बाद चाय।''

''जी सर!''

पांच मिनट बाद चपरासी ने सूचित किया कि सर साहित्य सम्पादक सुमित कुमार अभी आए नहीं है। शायद बारह बजे तक आएगें।

''हुंह'' अखबार में नजरें गड़ाए हुए ही वह बोले, ''आते ही भेजना और मैंने चाय के लिए कहा था।''

''जी सर। अभी ला रहा हूं। सुमित जी की सूचना देना जरूरी था न सर!''

''हुंह!''

ठीक बारह बजे रूमाल से पसीना पोंछते हुए लगभग पैंतालीस वर्ष के सुमित कुमार उनके चबिर का दरवाजा खोलकर, ''आ सकता हूं सर---मैं सुमित कुमार।''

''आइए।'' आंखों से चश्मा उतार सुमित कुमार पर नजरें गड़ाते हुए मनीष पंडित बोले और सामने पड़ी कुर्सी की ओर इशारा इशारा किया। सुमित कुमार लंबे, स्लिम, गोरे और चेहरे पर घनी दाढ़ी वाले भव्य व्यक्तित्व के धनी थे। सामने बैठे मरियल से अपने सम्पादक को देखकर, जो उनसे उम्र में पांच वर्ष ही बड़े थे, वह मन ही मन सोच रहे थे कि वह भी क्या कभी सम्पादक बन पाएगें। और तत्काल उनके मन में विचार ने जन्म लिया कि शायद कभी नहीं, क्योंकि जो खूबियां सामने बैठे व्यक्ति में थीं, जिसकी सूचना पूरे कार्यालय को थी और जो मुम्बई से चलकर उन सब तक पहुंची थीं वह उनमें कभी नहीं आ पाएगीं। मालिकों की चाटुकारिता वह कभी नहीं कर सकते जैसी सामने बैठे मनीष पंडित ने की थी। सम्पादक बनने के लिए मालिकों की हां-हुजूरी आवश्यक थी, जिसे अधीनस्थ तलवे सहलाना कहते थे। ''सुमित जी'' मनीष पंडित ने सुमित के चेहरे पर नजरें गड़ा दीं और कुछ सोचने लगे। सोच रहे थे कि 'काश वह भी सुमित जितना सुन्दर होते। सामने बैठे सुमित नामके इस व्यक्ति के कितने ही अफेयर होंगे। नहीं भी हो सकते। लेकिन दिल नहीं मानता। होंगे-- अवश्य होंगे। हो सकता है कि इसी दफ्तर में एक-दो हों। यहां तो मुझे देखकर ही लड़कियां बचकर निकल जाती हैं। मुम्बई में सारे प्रयास व्यर्थ रहे थे। एक को केबिन में घेरा तो उसने शोर मचा दिया था। यदि मालिकों का चहेता न रहा होता तब तो नौकरी चली ही गयी थी। लेकिन बात मुम्बई से लेकर दिल्ली तक फैल गयी थी।'

''सर, आपने याद किया।'

चकि उठे मनीष पंडित। ''हूंकृहां---'' कुछ देर चुप रहने के बाद बोले, ''आप चाय पिएंगे?।'' और घण्टी बजाने ही वाले थे कि सुमित कुमार बोले, ''सर, मैं चाय नहीं पीता।''

''ओह! बड़ी चीज पीते हैं?''

''बड़ी चीज सर?''

''यानी विदेशी ब्रैंड---।'' और मुस्कराए मनीष पंडित, ''साथ रहा करेगा।''

''नहीं सर, वह भी नहीं। न पान,सिगरेट और न ही शराब।''

''गुडकृवेरी गुड़---अखबार को आप जैसे कर्मठ और निरामिष लोगों की ही आवश्यकता है।''

''धन्यवाद सर।''

कुछ देर तक चुप्पी रही। दोनों के ऊपर पंखा बिना आवाज नाच रहा था। चबिर में घुसने के पांच मिनट के अंदर ही सुमित कुमार का पसीना सूख चुका था। ए सी की ठंडक उन्हें अच्छी लग रही थी। वह वरिष्ठ उप-सम्पादक थे और उन्हें अलग से केबिन मिला हुआ था, जो इतना छोटा था कि उनकी तीन-बाई चार की मेज और उनकी कुर्सी के अलावा केवल तीन और कुर्सियां थीं वहां। एक उनके दायीं ओर और दो उनके सामने। उनके सामने वाली कुर्सियों के पीछे या अगल-बगल बिल्कुल जगह नहीं थी। सामने बैठे व्यक्तियों को पैर सिकोड़कर बैठना होता। दायीं ओर की कुर्सी ठीक दरवाजे के सामने थी और इतनी जगह थी कि उस पर किसी के बैठे होने के बाद वह सिकुड़कर अपनी कुर्सी तक पहुंचते थे। उनकी केबिन में उनके सिर के ऊपर एक छोटा पंखा प्लाईवुड के पार्टीशन पर टंगा हुआ था। ''सुमित जी'' मनीष पंडित से अपना नाम सुनकर विचारों में खोए सुमित कुमार चौतन्य हो उठे, ''सर!''

''अखबार के नगर संस्करण में साहित्यिक पृष्ठ प्रकाशित होता है?''

''नहीं सर! केवल राष्ट्रीय परिशिष्ट है, जो मुम्बई से प्रकाशित होता है। उसके लिए मेरे पास आयी रचनाएं चयन के बाद वहां भेज दी जाती हैं।''

''वह मुझे मालूम है। वह परिशिष्ट मैं ही देखता था।''

कुछ देर की चुप्पी के बाद मनीष पंडित बोले, ''उसमें यहां के साहित्यकारों को अधिक स्पेस नहीं मिल पाता। मुम्बई से साहित्यिक परिशिष्ट रविवार को प्रकाशित होता है। मैं सोच रहा हूं कि यहां के साहित्यकारों के लिए प्रबन्धकों से कहकर बृहस्पतिवार को साहित्य के लिए दो पृष्ठ बढ़वा लूं।''

''सर, बहुत सही सोच रहे हैं आप। यहां के कई साहित्यकारों ने कितनी ही बार मुझे इस बारे में कहा----।''

''अवश्य कहा होगा'' तत्काल मनीष पंडित के मस्तिष्क में उन साहित्यकारों के नाम जानने की इच्छा जागृत हुई और उन्होंने पूछ लिया।

''सर, नारायण प्रसाद, वैभव कुमार, वंदना विभूति, विक्रांत क्रान्ति, विरस आजाद---'' क्षणभर रूककर सुमित कुमार आगे बोले, ''सर नगर में हर मोहल्ले में दो-चार कवि और नगर में लगभग पन्द्रह कथाकार हैं।''

''मुम्बई में किसी ने बताया था कि यहां प्रायः साहित्यिक कार्यक्रम होते रहते हैं। मतलब यह कि सांस्कृतिक रूप से बहुत जागरूक शहर है।''

''जी सर, सही सुना। नारायण प्रसाद जी को यह श्रेय जाता है।''

''शायद यह वही सज्जन हैं जो अपने पिता के नाम पर पुरस्कार देते हैं और उनके नाम से कई संस्थाएं संचालित हैं। उनके पिता नगर के बड़े साहित्यकार थे?'' ''जी सर, उनके पिता सरस्वती प्रसाद नगर के बड़े साहित्यकार थे। यशपाल के निकट थे।''

''मैं नारायण प्रसाद जी से मिलना चाहूंगा। उन्हें फोन करके मेरी ओर से मिलने का आग्रह करें। मैं आज ही प्रबन्धन से बृहस्पतिवार को साहित्य के लिए दो पेज बढ़ाने का अनुरोध करूंगा।''

''जी सर!''

''नारायण प्रसाद जी से क्या बात हुई मुझे सूचित करेंगे।''

''जी सर!'' सुमित कुमार उठ खड़े हुए। उन्हें इस बात की प्रसन्नता थी कि साहित्य के लिए दो पेज बढ़जाने से नगर में साहित्यकारों के बीच उनका प्रभाव बढ़जाएगा।

कुछ देर बाद आकर सुमित कुमार ने मनीष पंडित को सूचित किया कि नारायण प्रसाद उसी दिन शाम पांच बजे उनसे मिलने आने को तैयार हो गए हैं। ''नारायण प्रसाद जी'' मनीष पंडित बोले, ''नगर के साहित्यकारों के लिए, विशेषरूप से बृहस्पतिवार को, साहित्य प्रकाशित करने के लिए दो पृष्ठ बढ़ाने को लेकर मैंने आज ही मैनेजमेण्ट से बात की है। मेरी बात वह नहीं काटेंगे। इससे नगर में अखबार का प्रसार भी बढ़ेगा।''''सर, आप बिल्कुल ठीक सोच रहे हैं। मैंने इस बारे में कई बार सुमित कुमार जी से चर्चा की थी।''

''सुना आप भी लिखते हैं?''

''जी सर। अब तक मेरे तीन कहानी संग्रह और दो उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। लिखता नौकरी के दौरान भी था, लेकिन अवकाश ग्रहण के बाद साहित्य को समर्पित हो गया हूं।''

''नौकरी---?''

''जी मैं रेलवे में लेखा अधिकारी था।''

''बहुत प्रसन्नता की बात है। नारायण प्रसाद जी साहित्य आपके रक्त में है---वंशानुगत। प्रारंभिक दौर में मैंने भी बहुत लिखा। मेरे भी तीन कहानी संग्रह हैं, लेकिन इस अखबार में आने के बाद से केवल दो कहानियां ही लिख पाया। अब आपकी संगत का लाभ उठाना चाहूंगा और यहां रहते हुए जमकर लिखना चाहता हूं।'' ''मैंने पढ़ी हैं आपकी कहानियां---आप शायद वनिता पत्रिका में थे सर!'' ''हां, कुछ दिन रहा था वक्त काटने के लिए।''

''सर, सुनते हैं कि वनिता से निकले कितने ही पत्रकार बड़े पदों पर पहुंचे। आप भी आखिर आज इस अखबार के नगर प्रभारी हैं।''

''सब आप जैसे मित्रो की शुभकामनाएं हैं नारायण प्रसाद जी।'' एक क्षण के लिए रूके मनीष पंडित और घण्टी बजाकर चपरासी को बुलाया। उसके आते ही कड़क आवाज में बोले, ''शहर के इतने प्रतिष्ठित साहित्यकार मेरे पास आध घण्टा से बैठे हैं और तुम्हें चाय लाने तक का खयाल नहीं आया।''

''सरकृसर---अभी लाया सर।''

''तुरंत।''

''अरे आप चाय के लिए कष्ट न करें।'' नारायण प्रसाद बोले, हालांकि उनकी चाय पीने की इच्छा हो रही थी।

''कुछ और मंगाऊं?''

''अरे नहीं सर! उसका अवसर मैं दूंगा आपको। किसी दिन मेरे गरीबखाने में तशरीफ लाएं।''

''जब आप कहेंगे।''

थोड़ी देर बाद चपरासी ट्रे में दो कप चाय और बिस्कुट की प्लेट सजाकर ले आया। नारायण प्रसाद मनीष पंडित की आव-भगत से अभिभूत थे।

''आप अपने पिताजी के नाम से जो पुरस्कार देते हैं उसके लिए चयन का आधार क्या होता है?'' कप में चीनी घोलते हुए मनीष पंडित ने पूछा।

''सर, साहित्यकार के साहित्यिक अवदान पर।''

''ओह! तब तो मैं भी हकदार बन सकता हूं।''

''सर, बन नहीं सकते-बल्कि एक क्षण पहले ही मैंने तय किया कि अगला पुरस्कार आपको ही दूंगा। आज ही इस आयोजन के संयोजक विक्रांत क्रान्ति से चर्चा करके कल घोषणा कर दूंगा। आपसे अनुरोध है कि अपने अखबार में समाचार अवश्य छाप देंगे।''

''अरे, आपने तो कमाल कर दिया। मैं गर्वित हूं और मेरे यहां ही क्यों समाचार दूसरे अखबारों में भी छपना चाहिए।''

''कोशिश होगी।''

''आप सभी को यह समाचार लिखित भेजेंगे तब अवश्य छपेगा।''

''वही करूंगा सर।''

मनीष पंडित से मिलकर नारायण प्रसाद गदगद थे। यह पहला अवसर था जब नगर के उस अखबार के सम्पादक ने उन्हें याद किया था।

कुछ देर बाद प्रसन्न नरायण प्रसाद अखबार कार्यालय से निकलकर सीधे विक्रांत क्रान्ति के निवास पर पहुंचे। उस समय शाम के सात बज रहे थे और विक्रान्त क्रान्ति कुछ देर पहले ही ऑफिस से घर पहुंचे थे।

मनीष पंडित को 'सरस्वती प्रसाद स्मृति पुरस्कार' देने का नारायण प्रसाद का निर्णय सुनकर विक्रांत क्रान्ति भड़क उठे, ''आपको पता है इस व्यक्ति के बारे में?''

''क्या?''

''कि अपनी भाभी और मुम्बई में एक सहयोगी के साथ बलात्कार के आरोप हैं इस पर।''

''विक्रांत जी, आरोपों की पुष्टि तो नहीं हुई न! झूठे भी हो सकते हैं। अफवाह भी हो सकती है। किसी की उन्नति को लोग आसानी से पचा नहीं पाते। मैं तो पहली ही मुलाकात में उनसे प्रभावित हो गया। साहित्यिक व्यक्ति हैं। तीन कहानी संग्रह प्रकाशित हैं। 'दैनिक जागृति' के नगर और उसके आसपास प्रसार के लिए हर बृहस्पतिवार को साहित्य के लिए दो पृष्ठ बढ़ाने के लिए उन्होंने आज ही अपने मैनेजमेण्ट से बात की है और उम्मीद है कि जल्दी ही वह प्रारंभ हो जाएगा। तब हमें छपने के कितने अवसर मिलेंगे!''

''जब आपने तय ही कर लिया है और उन्हें कह भी दिया है तब----'' हथियार डाल दिए थे विक्रांत क्रान्ति ने। 'सरस्वती प्रसाद स्मृति पुरस्कार' समारोह का भव्य आयोजन लाला शंकरलाल भवन में किया गया। हॉल खचाखच भरा हुआ था। नगर के प्रतिष्ठित साहित्यकार वैभव कुमार कार्यक्रम के अध्यक्ष थे और विरस आजाद मुख्य अतिथि। वक्ताओं में विक्रांत क्रान्ति और वंदना विभूति थे। दोनों ने मनीष पंडित की प्रशंसा में अपने शब्द भंडार खाली कर दिए। अध्यक्ष वैभव कुमार और विरस आजाद भी पीछे क्यों रहते, दोनों ने उन्हें उद्भट विद्वान, महान साहित्यकार घोषित किया और कहा कि उनके वहां होने से नगर ही नहीं, 'सरस्वती प्रसाद स्मृति पुरस्कार' भी गौरवान्वित हुआ है। 'सरस्वती प्रसाद स्मृति पुरस्कार' समारोह सम्पन्न हुए महीनों बीत गए, लेकिन नारायण प्रसाद और नगर के अन्य साहित्यकार 'दैनिक जागृति' में साहित्य के दो पृष्ठ बढ़ाए जाने की प्रतीक्षा ही करते रहे। वे कभी नहीं बढ़ाए गए क्योंकि उन्हें बढ़ाए जाने का प्रस्ताव मनीष पंडित ने मैनेजमेण्ट को कभी दिया ही नहीं।

फ्लैट नं।705, टॉवर-8, विपुल गार्डेन,
धारूहेड़ा-123106,हरियाणा
मो. 8059948233

कहानी अब शुरू होती है

दामोदर दत्त दीक्षित

लगभग छह महीने पहले से रिटायरमेन्ट के बाद की योजनाएँ बनाना शुरू कर दिया था। 'क्या करना है' से ज्यादा ध्यान 'क्या नहीं करना है' पर था। प्रशान्त कुमार आर्य दफ्तर और दोस्तों के बीच 'पी0के0' या 'पी0के0 सर' के नाम से जाने जाते थे। वैसे कुछ लोग मजाक में 'पीके आये' भी कह दिया करते थे। पत्नी सुनीता भी निजी वार्तालाप में 'पी0के0' ही कहती थीं अन्यथा सार्वजनिक वार्तालाप में उनके लिए वह 'सर' थे। वह पी0के0 का अपना अर्थ निकालती थीं - पिय के!

वह उन्नीस नवम्बर की रविवारीय सुबह थी। आकाश निरभ्र था, पर सरदी की खुशनुमा खुनक पेड़ों-पौधों पर ही नहीं, परिवेश के अन्तस्तल तक और लोगों के मन में भी गहराई तक उतर चुकी थी। नौकरश्री पधारे नहीं थे और बच्चे निश्चिंत होकर सो रहे थे। वह रिलैक्स मूड में चाय पर अखबार पढ़रहे थे। तभी सुनीता ने उनकी अखबारी एकाग्रता के परखच्चे उड़ा दिए, ''आप जिंदगी भर प्लैन बनाते रहे, सपने में भी 'प्लैन', 'नान-प्लैन' बड़बड़ाते रहे . . .। यह तो बताइए करीब आ रहे रिटायरमेन्ट के बाद की क्या प्लैनिंग है आपकी?''

अखबारी एकाग्रता का भुरकुस निकाल कर अपनी चाय-चर्चा शुरू कर देना सुनीता की आदत में शुमार था।

''रिटायरमेन्ट के बाद सब कुछ नान-प्लैन है - यही मेरा प्लैन है। बहुत काम कर लिया। जो नहीं कर सका, वह आगे भी नहीं कर पाऊँगा। घर बैठकर आराम करूँगा, डियर। सुना होगा तुमने - दुनिया बहुत बड़ी है किस-किस को रोइए, आराम बड़ी चीज है सिर ढक कर सोइए।''

सुनीता ने तीखेपन से उनके चेहरे पर नजरें गड़ाईं, ''पर आप तो कह रहे थे कि मन्त्री जी आपको एक्स्टेन्शन दिलाना चाहते हैं। कोई कानूनी रोड़ा अटका, तो ऊसर विकास निगम का एम0डी0 बना देंगे जो सीधे उनके हाथ में है।''

पी0के0 हौले से मुस्कुराए, मुस्कुराते रहे। तौलते रहे कि क्या कहें, फिर बात का संक्षिप्तीकरण कर बोले, ''हाँ, मंत्री जी ने कहा है, पर मैंने नहीं।''

''पर आप जैसा कर्मठ-सक्रिय व्यक्ति खाली कैसे बैठेगा' बोर नहीं होगा?'' सुनीता ने उत्साह-ऊर्जा पम्प करने की कोशिश की।

''सुनी, घर पर करने को बहुत कुछ रहेगा। तुम्हें देखते-देखते बोर हुआ जा सकता है क्या?'' उन्होंने प्रेम पगी मुस्कान फेंकी।

''इस रहस्य की जानकारी तुम्हें कैसे हुई? तुमने मुझे देखा जरूर है, पर देखते कभी नहीं रहे!'' वह 'फिस्स-सी' हँस दी जिससे उसकी पुरानी यारी थी।

''क्या करूँ डार्लिंग, तुम्हारी सौत यानी नौकरी ने कभी इसका अवसर ही नहीं दिया।''

''तो रिटायरमेन्ट के बाद पूरी कसर निकालोगे?'' ओठों पर ढीठ मुस्कान।

''बिलकुल, पूरी कसर निकालूँगा।'' पी0के0 ने उसे बाहों में घेरकर मुस्कान की भीषण चुमाई की। प्रेम और आकर्षण का गुनगुना-गुदाज-गुनगुनाता अंदाज!

सुनीता कराह उठी, ''इस तरह से तो कचूमर निकाल दोगे। साँस तक लेने न दोगे।''

''हाँ डियर सुनी, मैं भी कहाँ सरकारी काम की वजह से साँस ले पाता हूँ। कहता नहीं रहता - काम की वजह से साँस लेने की, दम मारने की फुर्सत नहीं! उसी गति को तुम पहुँची हो अभी, आगे भी पहुँचोगी...।''

''पर मैंने कौन-सा जुर्म किया है जो मेरी साँस के पीछे पड़ने का, मुझे साँसत में डालने का प्लैन बना रहे हो?'' ओठों पर शरमीली मुस्कान और आँखों में तृप्ति तैर आयी थी।

''मामूली जुर्म किया है? मुझे फँसाने के, अपने साथ बंधन में बाँधने के जुर्म मामूली हैं क्या? बड़ी कड़ी सजा है इनकी।''

''हाय मर जावाँ! ये जुर्म तो मैंने किए हैं।'' उसने पी0के0 के सीने पर अपना सिर धर दिया।

''तो फिर सजा भी भुगतो।'' उसने सुनीता के बाल सहलाए, सहलाता रहा।

वह सीने पर टिकी रही। चेहरे पर चंचल-चपल किशोरीभाव उतर आया था। गालों पर गुलाल भाव भर आया था। भीतर नदी उमड़ रही थी ...!

प्रशान्त कुमार आर्य मूलतः मेरठ जिले के कालंद गाँव के रहने वाले थे और पारिवारिक पृष्ठभूमि अत्यंत साधारण थी। शुरू में गाँव के प्राइमरी स्कूल में पढ़े। फिर पास के कस्बे सरधना से इन्टरमीडिएट किया। फिर पन्तनगर ऐग्रीकल्चर यूनिवर्सिटी से बी-एस.सी. और एम-एस.सी. (एग्रीकल्चर) किया। इसके बाद वहीं से पी0पी0 यानी प्लान्ट प्रोटेक्शन में पी-एच.डी. किया। पी-एच.डी. के आखिरी साल में थे कि पी0सी0एस0 एलाइड सर्विसेज में चयन हो गया। डी0ए0ओ0 यानी डिस्ट्रिक्ट एग्रीकल्चर आफिसर पद पर सरकार से जब तक काल आई, तब तक वह अपनी पी-एच.डी. थीसिस जमा कर चुके थे। नौकरी शुरू की। घर की कई जिम्मेदारियाँ थीं। मकान गिर रहा था, उसे ठीक करवाया। दो बहनों का विवाह किया। घर की जिम्मेदारियों के चलते अपना विवाह पिछड़ता चला गया। उम्र कहाँ किसका इन्तजार करती है? बढ़ती चली गई। फिर तो इतनी देर हो गई कि उन्होंने विवाह का इरादा छोड़ ही दिया या यों समझें ट्रेन छूट गई!

साल गुजर गए। पी0के0 का प्रमोशन डिप्टी डाइरेक्टर एग्रीकल्चर के पद पर हुआ। इसी के साथ उनका स्थानान्तरण आगरा से बरेली हो गया। फूफा जी ने सुना तो कहा कि बरेली में उनके घरेलू सदस्य जैसे मित्र रामनिवास शर्मा रहते हैं। वह शुरू में उनके घर रूक जाए। इसी बहाने परिचय भी हो जाएगा। जब सरकारी मकान मिल जाए, तो वह उसमें चला जाए।

पी0के0 बरेली स्टेशन पर उतरे। सामान के साथ सीधे रामपुर गार्डेन स्थित रामनिवास शर्मा के घर पहुँचे और वहीं अपना डेरा जमा दिया। नहा-धोकर नाश्ता किया और चार्ज लेने के लिए दफ्तर चले गए।

पी0के0 ने सोचा था कि तीन-चार दिन में सरकारी मकान में चले जाएँगे, परन्तु पूर्वाधिकारी ने मकान खाली करने में देर कर दी। इसलिए रामनिवास शर्मा के घर सोलह दिन रहना पड़ गया। सोलहवें दिन शाम के समय उनकी पुत्री पी0के0 के कमरे में गई ओर बोली, ''सर, मुझे आपसे प्यार हो गया है। आपसे शादी करना चाहती हूँ।''

जो कहने में लोग महीनों, कई-कई बरस लगा देते हैं, उसे सुनीता ने कुछ सेकंडों में, महज दो वाक्यों में निपटा दिया था। उसने प्यार का रोशनदान नहीं, खिड़की नहीं, अच्छा-खासा दरवाजा धड़ाम-से खोल दिया था।

पी0के0 हतप्रभ। सूझ नहीं रहा था कि कैसी और कैसे प्रतिक्रिया व्यक्त करें। आखिर बोल पड़े, ''सुनीता, ह्वाई आर यू जोकिंग? तुमको आज कोई और नहीं मिला क्या?''

सुनीता ने मुस्कुराते हुए कहा, ''सर, मुझे आज आप ही मिले हैं। कल भी आप ही मिलेंगे, परसों भी और उसके बाद भी . . .।'' उसके स्वर में मँजीरे की खनक थी।

वह खँखारे, जोर से हँसे, फिर बोले, ''फिर कहूँगा - सुनीता ह्वाई आर यू जोकिंग?''

हँसोड़ लड़की ने एकदम से चैनेल बदल दिया और गम्भीर हो गई, ''सर, आई ऐम सीरियस, रियली सीरियस, सीरियसली सीरियस . . .।''

पी0के0 कुछ देर तक सोचते रहे, फिर बोले, ?'सुनीता, यू आर वेरी नाइस...। पर सच यह है कि मैं शादी करना ही नहीं चाहता।''

''क्यों सर? आपको शादी से इतना बैर क्यों?'' सुनीता ने बुजुर्गी मुद्रा अख्तियार कर ली।

''करना होता तो पहले ही कर लेता। पर किया नहीं या समझो हुई नहीं। तुम्हें पता भी है मैं चालीस साल का हो गया हूँ। यह कोई शादी की उम्र है?'' वह विवाह की जिम्मेदारी से भागते नजर आए।

''पहले नहीं किया, तो अब कर सकते हैं। आप चाहे चालीस के हों या पचास के, मुझ पर कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। पता है आपको, विदेश में तो कुछ लोग 60-70 की उम्र में शादी करते हैं, बड़े मजे-से करते हैं। उन्हें देखते हुए तो आप इकदम जवान लगते हैं, सर! आप बताएँ नहीं, तो हर कोई आपको तीस से नीचे का ही बताएगा।'' वह मुस्कुरायी।

पी0के0 के ओठों पर भी मुस्कुराहट झलक गई, ''थैंक्स फार द काम्प्लीमेन्ट, पर मैं अब शादी करना ही नहीं चाहता, बिलकुल नहीं करना चाहता। तुम्हारा प्रस्ताव तुम्हारे पापा - शर्मा जी - और मेरे फूफा जी सुन लें तो क्या हश्र होगा, सोचा है कभी?''

''उनकी चिन्ता न करें। मैं अपने पापा को ही नहीं, तुम्हारे फूफा जी को भी - जिन्हें मैं अंकल कहती हूँ - मना लूँगी। आपकी यह चिन्ता दूर कर दूँगी। कोई दूसरी परेशानी? अगर होगी, तो उसे भी दूर कर दूँगी। अब बताइए?''

''क्या बताऊँ?''

''न बताना चाहें, न बताएँ। बस ?हाँ' कर दें। मात्र एक अक्षर का शब्द है - 'हाँ'। उसके बाद न आपको कुछ कहना है, न करना। बाकी सब सँभाल लूँगी।'' वाक्पटुता चरम पर थी।

''कैसे कह दूँ?''

''जैसे कहा जाता है। जैसे बहुत-से लोग पहले कहते आए हैं, आज भी कहते हैं और आगे भी कहते रहेंगे . . .। जरा समझने की कोशिश करें। मुझे आपसे इश्क हो गया है - सचमुच वाला, झूठ-मूठ वाला नहीं!'' सयाने के अंदाज पर दीवानी का अंदाज हावी।

पी0के0 ने सोचा कि जितना समझता था, उससे कहीं ज्यादा यह चतुर-चण्ट और हाजिरजवाब है।

''अच्छा सोचने का थोड़ा समय तो दो।''

''यह कहकर आप पीछा छुड़ाना चाह रहे हैं। पर इस मामले में सोचने जैसी कोई बात ही नहीं है। मैं तो तैयार हूँ ही। किसी और को नहीं, खुद आपको तैयार होना है। हो जाइए। इतना भरोसा दे रही हूँ कि शादी के बाद अफसोस नहीं करेंगे, घाटे में नहीं रहेंगे, दुख नहीं दूँगी।'' उसके चेहरे पर मधुर प्रेम-मधु पीने की बेताबी और ललक झलक रही थी।

''सुनीता, सुनो तो। मेरी-तुम्हारी उम्र में मामूली नहीं, चौदह साल का अन्तर है।'' पी0के0 अपने दृष्टिकोण को पगुराते रहे।

''सर, जब मुझे इसमें एतराज नहीं, तो आपको क्यों है?''

''सुनीता, सुनो तो . . .।''

''कुछ नहीं सुनना अब। वार्ता का समय समाप्त। चलती हूँ, बॉय . . .।'' पी0के0 के प्रेम में आकंठ प्रेममय हो चुकी सुनीता ने शरारती मुस्कान फेंकी और कमरे के बाहर हो गई।

पी0के0 ने ऐसा बवंडर कभी नहीं देखा था -- बवंडर जिसने ओस भीगी मटर की फली की तरह सारे शरीर में स्निग्धता-कोमलता दौड़ा दी थी।

सुनीता यानी चटक चाँदनी जैसा दमकता रंग, गुदाज-गुलगुली, भरी-भरायी देह, सुडौल गाल, सुपुष्ट वक्ष, बड़ी-बड़ी नीली आँखें, सुतवाँ नाक और सुनहरे बाब्ड बाल।

दो हफ्ते बाद पी0के0 के सरकारी आवास पर रामनिवास शर्मा पहुँचे। उन्होंने औपचारिक वार्तालाप के बाद बगैर किसी लाग-लपेट के, परन्तु अत्यंत विनम्रता से कहा, ''प्रशान्त कुमार जी, मेरी बेटी सुनीता आपसे विवाह करने की इच्छुक है। जिद पकड़ रखी है। किसी अन्य से विवाह के लिए बिलकुल तैयार नहीं। कहती है कि आपके साथ विवाह नहीं हुआ, तो आजीवन कुँवारी रहेगी। अतः आपसे हाथ जोड़कर (सचमुच हाथ जोड़ते हुए) विनती है कि आप विवाह हेतु प्रस्ताव स्वीकार करें, अपनी अनुमति दे दें। मेरी बेटी बोलती जरा ज्यादा है, परन्तु बहुत सुशील है, उसका हृदय मोम की तरह है। वह आपका बहुत ख्याल रखेगी, आपकी आज्ञा मानेगी, आपके प्रति निष्ठा रखेगी। आपके फूफा जी से भी बात हुई है। उन्होंने इस रिश्ते की स्वीकृति दे दी है और आपसे इस बारे में निवेदन करने के लिए कहा है। वह आपसे बात करेंगे। कृपया मेरा निवेदन स्वीकार करें।''

रामनिवास शर्मा ने सधे हुए वकील की तरह अपना पक्ष रखा, परन्तु बेटी की ही तरह फास्ट फारवर्ड में।

अगले रविवार फूफा जी ट्रेन से आ धमके। वह बड़े किसान थे। नेतागीरी भी करते थे। थोड़ा दबंग भी थे, इस नाते और अन्यथा भी रिश्तेदारों-परिचितों के बीच बहुत लोकप्रिय थे। पी0के0 भी फूफा जी का सम्मान करते थे, लिहाज करते थे।

स्नान-ध्यान और नाश्ता करने के बाद फूफा जी और प्रशान्त इत्मीनान से बैठे और बात करने लगे। कुछ इधर-उधर की बातों के बाद फूफा जी असल मुद्दे पर आए, ''बेटा प्रशान्त, सुनीता बहुत अच्छी लड़की है। इसे बचपन से देखता आया हूँ। जिंदगी भर तुम्हारा साथ निभायेगी, बहुत अच्छे से निभायेगी। इस बात से निश्चिन्त रहो। मैं गारंटी लेता हूँ। उसके पिता - मेरे पुराने दोस्त - विवाह के लिए तैयार हैं। मैं भी तैयार हूँ। अब तुम्हारी क्या परेशानी है? क्यों अकड़ दिखा रहे हो? पढ़-लिख रहे थे, घर की बहुत-सी जिम्मेदारियाँ थीं। तब विवाह नहीं हुआ, तो नहीं हुआ। अब सही! पाजामे के नाड़े की तरह इधर-उधर मत झूलो। चुपचाप हाँ करो वरना . . .तुम जानते ही हो . . .।'' समझाने से शुरू हुआ संवाद फटकार तक पहुँच गया।

पी0के0 उसी तरह खिसियाते रहे जैसे किसी बड़े-बुर्जुग की डाट-

> दिन सूखे पत्तों की तरह झरते चले गए। रिटायरमेन्ट का समय करीब आया। मंत्री जी ने एक दिन पी०के० को बुलाया और उनकी विशेषज्ञता और कर्मठता का हवाला देते हुए एक्स्टेन्शन दिलाने का प्रस्ताव रखा। पर पी०के० ने विनम्रता से मना कर दिया, ''सर, आपके इस विश्वास और कृपाभाव के लिए बहुत-बहुत आभार। पर एक्स्टेन्शन नहीं चाहता। बहुत काम कर लिया। अब घर पर रहना चाहता हूँ, आराम करना चाहता हूँ।''

फटकार-हड़क सुनकर लिहाज में खिसियाया जाता है। फिर बोले, ''फूफा जी, मैंने आपका कहा कभी टाला है जो अब टालूँ। पर जरा यह बताइए 'हाँ' चुपचाप कैसे की जाती है? चुपचाप रहूँगा तो 'हाँ' कैसे होगी और 'हाँ' बोलता हूँ तो आपके चुपचाप का उल्लंघन होता है।''

फूफा जी घनी, सफेद मूछों के पीछे से हँसे। फिर अपने तकियाकलाम से शुरूआत की, ''दुष्ट कहीं का! तेरी कपठेठी की आदत गई नहीं। चुपचाप की शर्त खत्म। अब तू बोलकर दिखा।''

पी०के० बोले, ''आपके आगे मजबूर हूँ। मेरे पिता जी और न जाने कितने बड़े-बड़े लोग मजबूर हो जाते हैं। मैं किस खेत की मूली हूँ! लीजिए 'हाँ'।'' ''डिप्टी डाइरेक्टर बन गया, पर बचपन की शरारत गई नहीं! उठ, मेरे साथ शर्मा जी के घर चल। वहाँ भी 'हाँ' कर। आज ही फाइनल होना है, अभी होना है। बाकी बातें बाद में होती रहेंगी।''

''मैं वहाँ भी 'हाँ' कर दूँगा, पर पिता जी तैयार होंगे तभी यह काम हो पाएगा।'' ''अरे बेटा प्रशान्त, तुम्हारा फूफा कच्ची गोली नहीं खेला है। उनकी सहमति लेने के बाद ही तुम्हारे पास आया हूँ। बाकी शर्मा जी तुम्हारे पिता जी के पास जाएँगे, उनकी औपचारिक स्वीकृति लेंगे।'' उन्होंने अपनी मूछें मरोड़ीं। फूफा जी उठ खड़े हुए। पी०के० भी। फूफा जी के साथ पी०के० अपनी भावी ससुराल पहुँच गए।

दिन सूखे पत्तों की तरह झरते चले गए। रिटायरमेन्ट का समय करीब आया। मंत्री जी ने एक दिन पी०के० को बुलाया और उनकी विशेषज्ञता और कर्मठता का हवाला देते हुए एक्स्टेन्शन दिलाने का प्रस्ताव रखा। पर पी०के० ने विनम्रता से मना कर दिया, ''सर, आपके इस विश्वास और कृपाभाव के लिए बहुत-बहुत आभार। पर एक्स्टेन्शन नहीं चाहता। बहुत काम कर लिया। अब घर पर रहना चाहता हूँ, आराम करना चाहता हूँ।''

''जैसी तुम्हारी मर्जी।'' मंत्री जी मायूसी से बोले।

जब घुड़सवार ही घोड़े पर बैठने से इन्कार कर दे, तो उसे घुड़दौड़ में कैसे शामिल किया जा सकता है?

रिटायरमेन्ट के बाद पी०के० लखनऊ का सरकारी फ्लैट खाली कर मेरठ के शास्त्री नगर स्थित अपने निजी घर में शिफ्ट कर गए। स्नेहा और सुजल के नाम जे०पी० एकेडेमी में लिखवा दिए गए। वह 'एच' ब्लाक के सेवानिवृत्त सरकारी अधिकारियों के समूह में शामिल हो गए और सुबह-शाम उनके साथ टहलने जाने लगे। जैसा कि ज्यादातर सेवानिवृत्त अधिकारियों के साथ होता है, अखबार, टी०वी० और फोन के सहारे दिन कटने लगे। वह मन्दिर भी जाते रहते। कभी-कभी सिनेमा हाल में सपरिवार फिल्म देख आते।

तीन महीने बीते थे कि पी०के० की तबीयत खराब हो गई। बुखार चढ़ा, तो लम्बा खिंचता चला गया। दवा लेने पर उतर जाए और दवा का असर खत्म होते ही फिर चढ़जाए। थोड़ा-सा चलने पर थकावट आने लगी। मुँह कसैला लगता, कुछ भी खाने का मन न हो। शरीर में खुजली महसूस हो। चेहरे, हाथ और टखने में सूजन आ गई। पेशाब जल्दी-जल्दी करने लगे। ब्लड टेस्ट और यूरिन टेस्ट करवाए गए। न ही टायफायड के लक्षण मिले, न ही मलेरिया के। न ही एन्सेफलाइटिस के और न ही डेंगू के।

न तो तबीयत में सुधार हुआ और न ही बीमारी का पता चला। आखिर मेडिकल कालेज के डाक्टर एस०के० त्यागी को दिखाया गया। उन्होंने पी०के० को देखा और रिपोर्टें देखीं। फिर बोले, ''ब्लड टेस्ट और यूरिन टेस्ट की ये रिपोर्टें सही नहीं लगतीं। मुझे लग रहा है डॉ० आर्य को किडनी इन्फेक्शन है। एक काम कीजिए। धन्वन्तरि पैथालाजी से आप ब्लड टेस्ट, यूरिन टेस्ट, यूरिन कल्चर और किडनी फंक्शन टेस्ट करायें। जल्द-से जल्द।'' तीन दिन में सारी टेस्ट रिपोर्टें आ गईं। डॉ० त्यागी ने रिपोर्टें देखकर कहा, ''मेरा शक सही निकला। इनकी दाहिनी किडनी काम नहीं कर रही है। रक्तशोधन नहीं कर पा रही। विकारग्रस्त फ्लूड खून में मिल जाने के कारण ही शरीर में सूजन है और खुजली हो रही है। इसी वजह से यह थकावट महसूस कर रहे हैं और पेशाब के लिए बार-बार जाना पड़ रहा है। इन्हें फौरन डायलिसिस मशीन पर ले जाया जाए जिससे खून साफ हो और इनकी तकलीफें कम हों।''

पी०के० का डायलिसिस पर रक्तशोधन हुआ। यह प्रक्रिया अत्यंत कष्टकारी थी। लगता था शरीर का सारा सत्व खींचा जा रहा है। फिर तो अस्पताल के चक्कर चर्या बन गई। हफ्ते में दो बार डायलिसिस पर रक्तशोधन हेतु अस्पताल जाना पड़ता। हँसी-खुशी का माहौल मायूसी में बदल गया। सुनीता का हाल तो बुरा था ही, स्नेहा और सुजल की पढ़ाई पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगा। स्नेहा बारहवें में थी, अबकी बार बोर्ड का इम्तहान होना है। सुजल नवें में था।

कुछ समय बाद मेडिकल कालेज के नेफ्रोलाजिस्ट डॉ० यू०के० चौधरी ने बताया कि दूसरी किडनी खराब होने का खतरा है, इसलिए दायीं किडनी ट्रान्सप्लान्ट कराना जरूरी हो गया है। अब बड़ा सवाल कि किडनी कौन डोनेट करे। उससे भी बड़ा सवाल कि किसकी किडनी अनुकूल पड़े। सुनीता ने अपनी किडनी डोनेट करनी चाही, पर डाक्टर ने ब्लड टेस्ट करके बताया कि उसका ब्लड ग्रुप बी निगेटिव है जबकि पी०के० का ब्लड ग्रुप ए पाजिटिव है। इसलिए उसकी किडनी पी०के० के कम्पैटिबिल नहीं है। स्नेहा और सुजल अभी बच्चे ही हैं, अठारह साल से कम होने के कारण वे किडनी डोनेट भी नहीं कर सकते।

रिश्तेदारों और अन्य निकटस्थ व्यक्तियों में इच्छुक की तलाश की गई। किसी ने स्वयं को बीमार बताकर छुटकारा पाया, तो किसी ने कमजोरी का आधार लेकर किनारा किया। कुछ ने कहा कि एक किडनी निकल गई, तो वे आगे चलकर बचेंगे नहीं। कुछ ने कहा कि एक किडनी दान दे दी और दूसरी किडनी पर बोझ बढ़जाने के कारण खराबी आ गई, तो उनका क्या होगा? तब तो कोई उन्हें किडनी नहीं देगा। सुनीता ने आश्वासन दिया कि वह व्यवस्था कर देगी, पर कोई मानने को तैयार नहीं हुआ। पी०के० ने न जाने कितने लोगों की नौकरी लगवायी, कितनों को प्रमोट किया, कितनों के साथ अन्य उपकार किए, पर कोई ऐसा न मिला जो अपनी एक किडनी देने को तैयार हो जबकि एक किडनी देने के बावजूद दूसरी किडनी से जीवन चल सकता है।

आखिर सुनीता के भाई स्वाधीन को बहन का दुख देखा नहीं गया और वह आगे आए। भाई का सद्भाव अन्दर तक भिगो गया। उन्हें हाई ब्लड प्रेशर की शिकायत थी, इसलिए सुनीता ने पहले उन्हें मना कर दिया था, ''भइया, आपकी तबीयत खराब रहती है। इसलिए आप मत डोनेट कीजिए। कोशिश कर रही हूँ। कोई न मिला तभी आपको तकलीफ दूँगी।''

पी०के० को सर गंगाराम हास्पिटल में भर्ती करा दिया गया। बहुत सारे टेस्ट हुए। स्वाधीन भी भर्ती हुए। उनका ब्लड ग्रुप ए पाजिटिव है, पर हास्पिटल ने खुद इसकी जाँच की। खून की जाँच से यह भी पता लगाया गया कि उन्हें डायबिटीज, एच०आई०वी०, एड्स या कोई अन्य संक्रामक बीमारी तो नहीं है। ब्लड सैम्पल से टिशू टाइपिंग, क्रास मैचिंग ओर ऐन्टी बाडी स्क्रीनिंग कराई गई। यूरिन टेस्ट और यूरिन कल्चर कराया गया। किडनी फंक्शन टेस्ट कराया गया जिससे पुष्टि कराई जा सके कि उनकी किडनी में कोई विकार तो नहीं है। चेस्ट एक्सरे और ई०सी०जी० भी कराया गया कि कहीं फेफड़े या हृदय की व्याधि तो नहीं है। कैन्सर स्क्रीनिंग भी कराई गई। स्वाधीन का चेक-अप इतने विस्तार से हुआ कि लग रहा था वह खुद किसी घातक बीमारी से ग्रस्त है। सारे टेस्ट अनुकूल रहे, बस ब्लड प्रेशर बढ़ा हुआ पाया गया। पर डाक्टरों ने कहा कि उसे दवाओं से कम कर दिया जाएगा और कोई चिन्ता की बात नहीं है।

डाक्टरों की टीम ने पी०के० का आपरेशन किया और उनकी दायीं किडनी निकालकर स्वाधीन की किडनी ट्रान्सप्लान्ट कर दी। आपरेशन सफल रहा। स्वाधीन को पाँच दिन तक अस्पताल में रखा गया, फिर डिस्चार्ज कर दिया गया। पी०के० को दो सप्ताह तक डाक्टरों की निगरानी में रखकर रिलीव कर दिया गया। मेरठ लाने के बाद सब कुछ ठीक-ठाक चलता रहा। लगभग दो महीने बाद फिर तबीयत बिगड़ने लगी। मेरठ में एक अस्पताल में भर्ती कराया गया। फिर एक के बाद एक दो अस्पतालों में। अपेक्षित सुधार नहीं हुआ। फिर घर ले आया गया।

पी०के० ने एक सुबह सुनीता को पास बुलाया। सुनीता कुर्सी खिसकाकर उनके बेड के पास पहुँच गई। ''बोलो, क्या बात है पी०के०?'' सुनीता बड़े ही लाड़ से बोली।

''सुनी, मुझे अब कहीं न ले जाओ। घर पर ही रहना चाहता हूँ।''

''याद है मेडिकल कालेज के नेफ्रोलाजिस्ट डॉ० यू०के० चौधरी ने क्या सलाह दी थी? बोले थे कि आपको दिल्ली के अपोलो हास्पिटल में दिखाया जाए। वहाँ डॉ० मेहरोत्रा नामी-गिरामी नेफ्रोलाजिस्ट हैं। नवीनतम मशीनें और सुविधाएँ हैं।'' ''सब याद है, क्या बोले थे। पर कहा न, मुझे कहीं न ले जाओ। घर पर ही रहने दो। जो होना होगा, होगा।'' पी०के० के स्वर में गहरी निराशा थी।

''ऐसा कैसे हो सकता है? अपोलो हास्पिटल तो ले ही जाना पड़ेगा। बेस्ट ट्रीटमेन्ट करवाना है।'' सुनीता ने नन्हे, सफेद बालों वाले उनके सिर को सहलाया, सहलाती रहीं।

''मानती क्यों नहीं? मुझे मेरे हाल पे छोड़ दो।''

''ऐसे कैसे छोड़ दूँ?'' उसने तिरछी, सतृष्ण दृष्टि से देखा।

''देखो ज्यादा एमोशनल-सेन्टीमेन्टल होने की जरूरत नहीं है। सुनी, भगवान् के घर जाने का वक्त आ गया है।'' वह छत को लगातार देखते या यों कहें घूरते जा रहे थे।

''क्या कह रहे हैं? चुप रहिए।'' सुनीता ने डपट दिया।

बात मन के अलाव में पकाने के बाद वह बोला, ''सुनी, बी प्रैक्टिकल। सच्चाई को स्वीकार करो। कितना पैसा मेरे इलाज में खर्च हो गया, पर स्थिति वैसी की वैसी - ढाक के तीन पात जैसी। अब बस करो। पैसा नहीं रहेगा, तो तुम्हारी जिंदगी कैसे कटेगी? बच्चों के पालन-पोषण, पढ़ाई-लिखाई का क्या होगा? मुझ पर अब बिलकुल खर्च न करो। शान्ति से जाने दो मुझे . . .।''

शब्द बसुले की तरह अन्दर तक छीलते चले गए। वह चीखी, ''ऐसा कुभाष मुँह से न निकालें। बस चुप ही रहें आप।''

पर पी०के० अपनी रौ में थे, ''सुनी, दिमाग से काम लो, दिल से नहीं। मैं जैसे हूँ, ठीक हूँ। मृत्यु सत्य है, अवश्यम्भावी है। इससे डरना नहीं चाहिए। खुशी-खुशी जाने के लिए तैयार हूँ। राह का रोड़ा मत बनो। अपना और बच्चों का भविष्य देखो। वर्तमान को भूलो। जो कुछ कह रहा हूँ, तुम्हारे भले के लिए कह रहा हूँ, अपने भले के लिए कह रहा हूँ। नहीं चाहता तुम्हें किसी के सामने हाथ फैलाना पड़े। बात मान, सुनी...।''

उनकी निराशाजनक बातें और आँखों का सूनापन गहराई तक वेध गया। तभी स्वाधीन आ गए।

''भइया, अच्छा हुआ आ गए। आप इसे -- अपनी बहन को -- समझाइए। ये तो पागल हो गई है, विवेक से काम नहीं ले रही। भइया, आपने हमारे लिए बहुत कुछ किया। इसे समझाइए, अब बचूँगा नहीं। मेरे इलाज पर पानी की तरह पैसा फूँक रही है। जो भी जमा पूँजी है वह इलाज में खर्च हो गई, तो इसका क्या होगा, बच्चों का क्या होगा? बिस्तर में पड़े-पड़े, इस अस्पताल से उस अस्पताल तक चक्कर लगाते हुए थक गया हूँ। टु बी वेरी फ्रैन्क, अब जीना नहीं चाहता। अपने शरीर को, अपनी स्थिति को अच्छी तरह से समझ रहा हूँ। बड़े-से-बड़े अस्पताल के चक्कर काटो, बड़े-से-बड़े डाक्टर को दिखाओ, कोई भी उपाय करो, कुछ होने वाला नहीं अब। बस चंद दिनों का खेल है। इसे समझाइए, मेरे इलाज पर अब पैसा न फूँके। अब तो ओ०के०-बाय-टाटा का समय है . . .।'' पी०के० मुस्कराए, फिर हँस दिए।

''पी०के०, आप बहुत बोल लिए, कुछ भी बोलने को बचा नहीं। बहुत भाषण दे लिए। अब चुप हो जाइए। भइया को भी दुखी कर दिया। जो ठीक लगेगा, वही करूँगी। अभी तक आपका हुक्म सिर-माथे पर रहा, पर अब नहीं . . .।'' सुनीता ने हस्तक्षेप किया, फिर उनके चेहरे से निगाह हटाकर सामने टँगे भगवान् विष्णु के कलेन्डर पर डाली और सिर झुका दिया। स्वाधीन की आँखें डबडबा आईं। कुछ बोला नहीं गया।

सुनीता को जुनून सवार हो मानो। कुछ भी हो, किसी भी कीमत पर हो, आस नहीं छोड़ना, प्रयास नहीं छोड़ना, विश्वास नहीं छोड़ना। कितनी भी खराब स्थिति हो, पर मेडिकल मिरैकिल भी तो होते हैं। हो सकता है, भगवान् परीक्षा ले रहे हों!

उसने पैसे देकर किडनी खरीदने का निर्णय लिया। वह दिल्ली गई। दलाल से मिली। उसने छह लाख माँगे। आखिर पाँच लाख में सौदा पटा। आधा पैसा पहले और आधा बाद में। उसने सुनीता से कहा, ''मैडम, मैं बारह साल से इस धन्धे में हूँ। रोजी-रोटी के लिए, अपने बीवी-बच्चों के लिए बेहद ईमानदारी से काम करता हूँ। बाजार में मेरी साख है, मेरी इज्जत है। आप आधा पैसा जमा कर दें। आपका काम होगा, समय पर होगा। इत्मीनान रखिए, मैडम।''

पी०के० को अपोलो हास्पिटल में भर्ती कराया गया। दलाल के

आदमी को भी भर्ती कराया गया जिसने शपथ-पत्र प्रस्तुत किया कि वह बिना किसी प्रलोभन के, बिना कोई धनराशि या वस्तु लिए, बिना किसी एजेन्ट के माध्यम से, बिना किसी दबाव के, स्वेच्छा से और परोपकार की भावना से अपनी किडनी दान कर रहा है।

पी0के0 और किडनी दानकर्ता के तीन दिन तक टेस्ट होते रहे। दानकर्ता का ब्लड ग्रुप ए पाजिटिव था। सभी प्रकार के टेस्टों में वह उत्तीर्ण हुआ और किडनी दान के लिए सर्वथा योग्य पाया गया। दानकर्ता की किडनी पी0के0 की बायीं विकारग्रस्त किडनी के स्थान पर ट्रान्सप्लान्ट कर दी गई।

सुनीता ने शेष रहे ढाई लाख रूपए का नकद भुगतान दलाल को कर दिया। किडनी दानकर्ता की चार दिन बाद अस्पताल से छुट्टी कर दी गई। वह दलाल से पैसे लेकर बिहार स्थित अपने गाँव चला गया। सुनीता को महज एक किडनी की दरकार थी, परन्तु उस व्यक्ति के पास जरूरतों का अम्बार था, समस्याएँ-ही-समस्याएँ थीं। सुनीता और किडनी दानकर्ता दोनों ने अनियमित कार्य किया था, पर यह कह पाना कठिन है कि वे गलत हैं या उन्होने गलत कार्य किया है।किडनी ट्रान्सप्लान्ट करने के दो हफ्ते बाद पी0के0 को अपोलो हास्पिटल से डिस्चार्ज कर दिया गया। वह घर आ गए। चलना-फिरना शुरू हो गया। बहुत दिन बाद घर में खुशियाँ लौटीं।

दो महीने पूरे होने वाले ही थे कि पी0के0 की तबीयत फिर बिगड़ी। स्थानीय सुभारती हास्पिटल में दिखाया गया। डायलिसिस पर रक्तशोधन किया गया। डाक्टरों ने सलाह दिया कि डायलिसिस अस्थाई उपाय है, इन्हें एम्स, दिल्ली ले जाइए। वहीं कुछ हो सकता है।

सुनीता पी0के0 को लेकर एम्स पहुँची। साथ में भाई स्वाधीन और तीन अन्य स्वजन थे। इलाज शुरू हुआ। डाक्टरों ने बताया कि कुछ अनजान वजहों से ट्रान्सप्लान्ट की गई किडनियाँ पूरी तरह से काम नहीं कर रही हैं। वह काफी कमजोर हो गए थे। गले के पास की हड्डियाँ उभर आयी थीं। गाल पिचक गए थे। आँखें धँस गई थीं और लगता था कि उनमें जंगली झाड़-झंखाड़ उग आए हैं। पी0के0 बाइस दिन एम्स में भर्ती रहे। तेइसवें दिन साँस टूट गई। खबर सुनीता तक पहुँची। वह लाबी में गश खाकर गिर पड़ी। आई0सी0यू0 तक पहुँच नहीं सकी। स्वजनों ने डाक्टर को बुलाया। सुनीता को भर्ती किया गया। कुछ समय बाद होश आया।

सूरज अस्त हो गया था। शाम ने अपना श्यामल शामियाना तानना शुरू कर दिया था। आकाश साफ था, पर सुनीता को चारों ओर धुन्ध-ही-धुन्ध नजर आ रही थी ठीक वैसी ही जैसी मन में छायी हुई थी। पी0के0 के पार्थिव शरीर के साथ सुनीता और अन्य स्वजन मेरठ पहुँचे। रिटायर हुए साल भर नहीं बीता था। वह आराम करना चाहते थे, महाआराम में पहुँच गए! सुनीता के सामने सब कुछ फास्ट फारवर्ड फिल्म की तरह गुजर गया। वह दूसरी दुनिया में पहुँच गई जहाँ साँय-साँय करता वन है, तेज तूफान आया हुआ है, दूर-दूर तक कोई नहीं है और वह निपट अकेली है . . .! अभी तक जो कहा गया, पूर्वपीठिका मात्र है, कहानी अब शुरू होती है . . .!

1/35, विश्वास खण्ड, गोमती नगर,
लखनऊ-226010 (उ0प्र0)
मो0- 9415516721
ईमेल-radhadamodar21@gmail.com

पुस्तकें मिली

कोमा एवं अन्य कहानियाँ
जवाहर चौधरी
बोधि प्रकाशन, जयपुर-302006
मूल्य : रू.150/-

ढपोरशंख का पुनर्जन्म (कविता संग्रह)
रामकिशोर मेहता
उद्भावना प्रकाशन, गाजियाबाद
मूल्य : रू.100/-

एक स्वर की तलाश (गीत संग्रह)
रामकिशोर मेहता
उद्भावना प्रकाशन, गाजियाबाद
मूल्य : रू.125/-

दिशा और दृष्टि (समीक्षा संग्रह)
रामकिशोर मेहता
उद्भावना प्रकाशन, गाजियाबाद
मूल्य : रू.60/-

रंगों में रंग- प्रेमरंग (प्रेम कविताएं)
मोहन सपरा
आस्था प्रकाशन, जालंधर
मूल्य : रू.195/-

ये दुनिया वाले पूछेंगे (व्यंग्य संग्रह)
डॉ.प्रदीप उपाध्याय
सर्वप्रिय प्रकाशन, दिल्ली-110006
मूल्य : रू.100/-

दर-ब-दर (उपन्यास)
दिलीप जैन
बोधि प्रकाशन, जयपुर 302006
मूल्य : रू.120/-

दहकता साल वन
साधना मिश्रा
ज्ञानोदय प्रकाशन, कानपुर
मूल्य : रू.300/-

अपेक्षाओं के बियाबान (कहानी संग्रह)
निधि अग्रवाल
बोधि प्रकाशन, जयपुर 302006
मूल्य : रू.250/-

बसंत प्रकृति की शृंगार ऋतु है

गरिमा संजय दुबे

शरद सत्व का, बंसत रज का और ग्रीष्म तम प्रधान ऋतु है। त्रिदेवोंमें भी शरद ब्रह्मा से, बसंत विष्णु से और ग्रीष्म महादेव से जुड़े हैं। क्योंकि ग्रीष्म और वर्षा के संधिकाल पर सावन होता है जो शिव का माह है। यूँ शिव के यहाँ तो ''सदा वसंतम'' का उद्घोष है, किंतु यहाँ प्रधानता मन के बसंत की है। जो श्मशान के तप में, अघोरी के वेश में, भूत पिशाच के सानिध्य में, हलाहल को कंठ में धारे फिर भी सदा वसंतम् का जयघोष करे, यह केवल महादेव के लिए ही संभव है।और जो महादेव की तरह जीवन की उष्णता, जीवन के तम को नियंत्रित कर ले बसंत और सावन उसके ही हिस्से आयेगा।

बसंत रज प्रधान इसलिए है कि अपनी पूरी धज के साथ यह आपके सम्मूख आता है। जैसे कोई धनी नवयौवना या स्त्री किसी उत्सव में बार बार अपने वसन और आभूषण बदल बदल कर अपना आकर्षण बिखेरती है ठीक वैसे ही बसंत अपनी पूरी समृद्धि प्रदर्शित कर देना चाहता है।

'सज शृंगार ऋतु आई बसंती, जैसे नार हो कोई रसवंती' जैसे गीत भी इस धारणा को प्रमाणित करते हैं। शरद में प्रकृति तपस्वी होती है, शरद रूपी तप से समृद्ध हुई प्रकृति बसंत में खिलखिलाती है, गुनगुनाती है, अल्हड़ किशोरी सी वन उपवन में वासंती बालियों व लताओं के रूप में लहराती है । पीला रंग यूँ भी प्रसन्नता का परिचायक है, तो बसंत पंचमी से प्रारंभ हो यह ऋतु फागुन् के विभिन्न रंगों तक अपना उल्लास बिखेरती है। प्रकृति के उल्लास में, खग वृंद के किल्लोल में, कोयल की मधुरता में, आम्रकुंज की मँजरियों में बसंत का सौंदर्य बहुगुणित होता है। गीता में श्री कृष्ण कहते हैं, ऋतुओं में मैं कुसुमाकर बसंत हूँ ''अहम ऋतुनाम कुसुमाकरः''। ऊर्जा उल्लास, यौवन से भरा बसंत । बसंत एक युवा ऋतु है। यूँ देखे तो बसंत नव यौवन, ग्रीष्म जीवन के संघर्ष का और ऋतु शरद वार्धक्य की गरिमा से संपन्न ऋतु है। कालिदास के हर महाकाव्य में बसंत अपनी पूरी समृद्धि के साथ उपस्थित है, मेघदूत हो या अभिज्ञान शाकुंतलम, ऋतु संहार में वे बसंत के इसी राजप्रधान गुण का वर्णन करते है।

> **"शृंगार बसंत का स्थाई भाव है, अभिसारिका नायिका भी इसी ऋतु की प्रतिक्षा करती है, तो मदन उत्सव में पद्मा नारी के पद स्पर्श से दिव्य अशोक वृक्ष पर पुष्प भी इसी ऋतु में फलते हैं। जो शोक को हर ले वह अशोक पुष्प (आचार्य द्विवेदी) तो बसंत शोक को हरने वाली ऋतु है। बसंत प्रकृति के शृंगार की ऋतु है। शृंगार और काम एक दूजे के पर्याय हैं। यह केवल संजोग नहीं है कि पूर्व में बसंत उत्सव, मदन उत्सव और पश्चिम में वेलेंटाईन डे जैसी प्रेम ऋतु इसी पक्ष में आती है।"**

''द्रुमा सपुष्पारू सलिलं सपदमं स्त्रीयः पवनः सुगंधिः

सुखा प्रदोषाः दिवासश्च रम्याः सर्वप्रियं चारूतरे वतन्ते''

कवियों और गीतकारों की यह प्रिय ऋतु मादकता और प्रेम की ऋतु मानी गई है, पुराणों, वेदों, ग्रंथों से लेकर जयदेव के गीत गोविंद तक, वाल्मीकि रामायण, तुलसी कृत मानस से लेकर प्रसाद की कामायानी तक, और पद्माकर की रचनाओं, केशव, बिहारी, घनानंद, सेनापति व अन्य रीति कालीन कवियों के सौंदर्य वर्णन से लेकर आधुनिक युग के छायावादी कवियों लेखकों ने इसे कामौद्दीपन की ऋतु कहा है। कौन ऐसा है जो बसंत के मोह पाश से बच सका है, कौन ऐसा है जिसे सौंदर्य, रस रूप, गंध, स्पर्श ने न छुआ हो। शृंगार बसंत का स्थाई भाव है, अभिसारिका नायिका भी इसी ऋतु की प्रतिक्षा करती है, तो मदन उत्सव में पद्मा नारी के पद स्पर्श से दिव्य अशोक वृक्ष पर पुष्प भी इसी ऋतु में फलते हैं। जो शोक को हर ले वह अशोक पुष्प (आचार्य द्विवेदी) तो बसंत शोक को हरने वाली ऋतु है। बसंत प्रकृति के शृंगार की ऋतु है। शृंगार और काम एक दूजे के पर्याय हैं। यह केवल संजोग नहीं है कि पूर्व में बसंत उत्सव, मदन उत्सव और पश्चिम में वेलेंटाईन डे जैसी प्रेम ऋतु इसी पक्ष में आती है।

कभी कभी मुझे लगता है क्या यह नीलाग्रह इन दिनों कहीं किसी दूसरे गृह या सेटेलाईट से देखे जाने पर पीला तो नहीं दिखने लगता होगा।

महादेव पार्वती की दिव्य प्रेम कहानी, जो इस सृष्टि का प्रथम प्रेम प्रसंग है इसी ऋतु में पूर्णता पाता है। कामदेव के तूणीर में कई तीर थे किंतु कहते हैं कि महादेव की समाधि भंग करने के लिए उन्होंने इसी बसंत के पुष्पों से सजे तीर का प्रयोग किया था। बसंत काम देव के मित्र हैं।कैसी अद्भुत बात है, महादेव के वज्र हृदय पर बसंत की कोमल चोट ने उनकी समाधि भंग की, किंतु जो सती के वियोग में समाधिस्थ हो जाए उसे वज्र हृदय कैसे कहें, वह तो फूल की पंखुरी से भी कोमल हृदयका स्वामी है, तभी तो आशुतोष है, तभी तो द्रवित भी शीघ्र होता है, तभी तो क्रोध भी अधिक आता है, तो शिव की समाधि भंग करने का गौरव बसंत को मिला, और काम को अनंग होने का वर भी।

इसी बसंत की पूर्णता होती है महाशिवरात्रि पर शिव और पार्वती के विवाह के रूप में, जिन्हें अब सृष्टि का संचालन करना है, जीवन के सृजन और विश्व के कल्याण का हेतु बनना है। धर्म अर्थ काम और मोक्ष में काम पहले आता है। बसंत अर्थ संपन्नता को धर्म के साथ भोगने की प्रेरणा देता है, भौतिक समृद्धि, संपन्नता, उल्लास का विरोध नहीं है, उसकी महता का स्थापन उत्सव है बसंत साथ ही सृष्टि संचालन में काम की विधेयक, मर्यादा संपन्न, गरिमामय स्थापना का भी यह अनूठा पर्व है। बसंत काम को वासना से भिन्न परिभाषित करने की ऋतु है। बसंत ऋतुराज है। काम देव के धनुष से बाण चलने पर ध्वनि नहीं होती, जो काम की मर्यादा का, उसके भोग की शांति और शालीनता का परिचायक है।

बसंत शिव और पार्वती की तरह विश्व कल्याण हेतु जीवन धर्म निभाने और सार्थक करने का संदेश देता है, न कि किसी अनियंत्रित वासना का दास बन स्वयं और संसार को नरक में धकेलने का।

परम योगी महादेव को गृहस्थ महादेव में बदलने का हेतु भी यही बसंत है। कैसी उलट बांसी है, महायोगी अब विश्व कल्याण के लिए घर बसाने चला है। एक ध्रुव पर वैराग्य का चरम है तो दूजे पर काम का आश्रय ले सृष्टि के निर्माण में रत होना है। ऐसे विपरीत ध्रुव जो साध सके वही शिव है। शिव प्रथम नारीवादी भी हैं, स्त्री की गरिमा का पूर्ण समर्थन बिना किसी स्वार्थ के केवल शिव ही कर सकें हैं। प्रायः अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस भी महाशिवरात्रि के आस पास ही आता है, जो शिव के नारीवादी व्यक्तित्व की व्याख्या का भी अवसर देता है। बसंत स्त्री तत्व की ऋतु है, स्त्री की प्रगल्भता, सौन्दर्य, सुघड़ता, शालीनता, मादकता हर गुण को प्रदर्शित करती है यह ऋतु, और इन सब गुणों से सम्पूर्ण सृष्टि को लाभान्वित करती है। स्त्री के ममता मयी स्वरूप की तरह उदार हो यह सम शीतोष्ण ऋतु उदारता से अपने कोश को लुटाती है। तप और शीत के संतुलन से अपनी संतानों के पोषण का ध्यान रखने वाली मातृ स्वरूपा ऋतु भी है बसंत ।

बसंत रति और काम की ऋतु होते हुए भी मर्यादा की ऋतु है, जो माँ सरस्वती के आह्वान से प्रारंभ हो महाशिवरात्रि पर पूर्णता पाती है। स्पष्ट है ज्ञान, बुद्धि, विवेक के आह्वान से प्रारंभ हो कल्याण रूपी शिव पर जाकर ही मनुष्य की खोज पूर्ण होती है। बसंत उसी प्रज्ञा मेधा, संपन्नता, समृद्धि, उल्लास, वैभव के कल्याण स्वरूप का आह्वान है।

18 बी वंदना नगर एक्स इंदौर मो.9009046734

बहस

सोश्यल मीडिया और साहित्य

समावर्तन एक सांस्कृतिक साहित्यिक धरोहरधर्मी मासिक पत्रिका है। उसके पाठक समाज के विभिन्न वर्गों में फैले हुए हैं। ऐसे में यह जानना जरूरी है कि वे सोश्यल मीडिया पर धड़ाधड़ परोसे जा रहे साहित्य की गुणवत्ता से वाकिफ हैं अथवा नहीं तथा आगे जाकर इस प्रकार के साहित्य की उपादेयता क्या होगी अथवा सोश्यल मीडिया पर साहित्य का भविष्य क्या होगा? इन्हीं सब जिज्ञासाओं को लेकर हमने एक बहस आयोजित की है जिसमें पांच प्रश्न नियत किये हैं जिन्हें चुनिंदा शहरों के प्रबुद्ध लोगों से जानने की कोशिश की जाएगी। इस बहस में इस बार उज्जैन और आस-पास के शहरों के कुछ प्रबुद्धजन भाग ले रहे हैं। प्रश्नकर्ता हैं - कवि-कथाकार तथा सहायक जनसंपर्क अधिकारी श्री हरिशंकर शर्मा तथा प्रश्नों के सटीक उत्तर दे रहे हैं बाल कहानी लेखक श्री सतीश शर्मा (उज्जैन), विधि विशेषज्ञ श्री कैलाश व्यास (रतलाम), वरिष्ठ चिकित्सक डॉ.अजय जैन (उज्जैन) तथा कथाकार रुचि आशीष नेमा (इंदौर)। इस वैचारिक अनुष्ठान में भाग लेने वाले सभी प्रबुद्धजनों के प्रति हमारा आभार।

- श्रीराम दवे, संयोजक

पूछे गये प्रश्न

- सोश्यल मीडिया पर इन दिनों साहित्य की कई विधाओं का सृजन देखा-पढ़ा जा रहा है। क्या आपने इसे देखा-पढ़ा या इसमें भागीदारी की है?
- क्या साहित्य जैसे साधनापरक सृजन के लिए यह माध्यम उचित मंच है?
- सोश्यल मीडिया पर जो साहित्य आ रहा है उसे आप किस श्रेणी में और क्यों रखते हैं अर्थात 1- श्रेष्ठ, 2- चलताऊ, 3- निकृष्ट ?
- यद्यपि वर्चुअल पत्रिका 'समावर्तन' में हमने पूरा ध्यान रखा है तथापि क्या आपको भी लगता है कि सोश्यल मीडिया पर आ रहे अधिकांश साहित्य में वरिष्ठ रचनाकारों की रचनाओं या उनके अंशों अथवा भावों की छबि दिखाई देती है? इस बाबत आप क्या सोचते हैं।
- क्या आप मानते हैं कि आगे जाकर इस माध्यम में भी श्रेष्ठ सृजन सामने आयेगा ?

सोश्यल मीडिया ने साहित्य को पंख लगा दिये हैं

साहित्य को संप्रेषित किस तरह से किया जाए, इसका माध्यम क्या हो? किसी जमाने में वेद,पुराणों, धार्मिक ग्रंथों को ताड़ पत्रों पर लिखकर सहेजा जाता था . यह हमारा साहित्य भी था। श्रुति और वाचिक परम्परा से इसका सम्प्रेषण होता था। अच्छी भाषा में लिखी सामग्री लोगों का पथ प्रदर्शन करें साहित्य का उद्देश्य यही है।

आज डिजिटल युग है। हम सम्प्रेषण के किसी एक माध्यम के बंधक नहीं रह गए है। नई सदी में युगांतकारी परिवर्तन हुए है। परिवर्तन की सुंदरता यह है कि आप कविता, कहानी लेख पढ़ने के लिए पत्र, पत्रिका या किताब के प्रकाशित होने का इंतजार नहीं करते। ना ही लेखक किसी तरह की देर करते हैं। लिखा और प्रकाशित कर दिया। सोशल मीडिया ऐसा साधन है जहां चुटकी में रचना विश्व के एक कोने से दूसरे कोने में चली जाती है। पढ़ने वाले पढ़ भी लेते हैं और उस पर प्रतिक्रिया व्यक्त कर देते है। सबकुछ फटाफट।

प्रथम दौर में कंप्यूटर क्रांति ने साहित्य निर्माण, उसको संग्रहित करने व छापने की क्रिया में अद्भुत परिवर्तन किया । दूसरे दौर में सोशल मीडिया का आया। जब व्हाट्सएप, फेसबुक, इंस्टाग्राम व ट्विटर जैसे सम्प्रेषण के माध्यम एंड्रॉयड प्लेटफॉर्म पर आ गए। इसने सूचनाओं के संसार को तो विस्तार दिया ही साहित्य के फलक को भी बड़ा कर दिया।

पहले पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से ही साहित्य का प्रचार प्रसार होता था।लेकिन आज फेसबुक पर, यूट्यूब पर सूर तुलसी कबीर गाए जाते हैं। निराला नीरज पहचाने, पढ़े जाते हैं। निदा फाजली,बशीर बद्र, जौक , जोश के शेर और दुष्यंत कुमार की गजलें ऐसे लोग शेयर करते है जिनका साहित्य से दूर-दूर का वास्ता नहीं। आज की राजनीतिक सभाएं दुष्यंत कुमार की गजल 'हो गई है पीर पर्वत सी पिघलना चाहिए' से शुरू और 'एक पत्थर तो तबियत से उछालो यारों' पर समाप्त होती हैं। इस तरह साहित्य किताब से निकलकर जन - जन तक पँहुचने में कामयाब हुआ है। यह डिजिटल या डॉट कॉम की देन है।

सोशल मीडिया ने साहित्य को पंख लगा दिए हैं। लेकिन साहित्य के साधक सस्ती लोकप्रियता अर्जित करने के लिए साहित्य के मैदान में कूदने से भयभीत लगते हैं । हालांकि डरने का कोई कारण ही नहीं हैं। जो अच्छी चीज है वही चलेगी। वही संप्रेषित होगी । यह माध्यम उन लोगों का है जो सरल भाषा में अपनी बात रख पाएगा। वही इस माध्यम में विजेता की तरह उभरेगा । हिंदी साहित्य किताबों,अलमारीयों व लाइब्रेरी में बंद है उसको बाहर लाने का काम यदि करना है तो गम्भीर सृजनकर्ताओं को इस नए माध्यम को आत्मसात करना होगा, तमाम बुराइयों के साथ। आजकल हिंदी के अनेक रचनाकार यथा - श्री भारत यायावर, श्रीं विनोद शाही, युवाओ में श्रीं आलोक श्रीवास्तव, सुशोभित शक्तावत और अन्य कई फेसबुक पर खूब अच्छा लिखकर पोस्ट कर रहे है। इस विषय पर कुछ ऐसे लेखकों से बात करने का प्रयास किया,उनके विचार जानने का प्रयास किया जो बड़े साहित्यकारों की सूची में शामिल नहीं हो पाए हैं,लेकिन उनका जीवन लेखन में गुजरा है। साथ ही विशुद्ध रूप से हिंदी कविता, शेरो शायरी के रसिक मित्रो से भी बात की जो मंच संचालन में और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर वरिष्ठ लेखको की रचना सम्मानपूर्वक उनका नाम लेकर पढ़ते है, शेयर करते है।

हरिशंकर शर्मा,मो. 9424863313, hari1961@gmail.com

सोश्यल मीडिया में स्तरीय सामग्री खोजना कठिन कार्य है

जबसे सोशल मीडिया का प्रादुर्भाव हुआ है तब से साहित्य के क्षेत्र में निरंतर क्रांतिकारी बदलाव देखने में आ रहे हैं।सोशल मीडिया के आने के पूर्व तक साहित्य के क्षेत्र में केवल प्रिंट मीडिया का ही दबदबा रहता था लेकिन सोशल मीडिया के आने से साहित्य की पहुंच और अधिक प्रभावी होने लगी है। नई पीढ़ी के हाथों में इलेक्ट्रॉनिक गेजेट्स के माध्यम से सोशल मीडिया बहुत प्रभावी स्थान रखता है। हालांकि सोशल मीडिया के आने से पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों के प्रचार प्रसार पर विपरीत प्रभाव हुआ एवं कई स्थापित पत्र पत्रिकाएं बंद हो गई। जिसके लिए यह प्रकाशन स्वयं भी जिम्मेदार रहे हैं।

आम पाठक की दृष्टि से देखा जाए तो पाठकों को तो सोशल मीडिया के आने से बहुत लाभ ही हुआ है। आर्थिक दृष्टि से देखें तो पत्र-पत्रिकाओं की लागत के मुकाबले सोशल मीडिया पर पाठ्य सामग्री तक पहुंचना कम लागत में संभव हुआ है।

यह भी सच है कि सोशल मीडिया में स्तरीय सामग्री को खोजना भी कठिन कार्य है लेकिन सुरूचिपूर्ण पाठकों के लिए स्तरीय सामग्री ढूंढना भी इतना कठिन नहीं है। सोशल मीडिया का प्रभाव है कि प्रिंट मीडिया की स्थापित पत्र पत्रिकाएं आर्थिक संकट में आकर समाप्ति की राह पर चल पड़ी है।साहित्य लेखन की दृष्टि से देखा जाए तो भी सोशल मीडिया बहुत लोकप्रिय हुआ है। आज छोटे से लेकर बड़े-बड़े स्थापित साहित्यकार लेखक, पत्रकार इत्यादि सभी सोशल मीडिया पर निरंतर सक्रिय रहने को बाध्य हुए हैं।क्योंकि इसका प्रचार प्रसार केवल देश ही नहीं विदेशों में भी बहुत आसानी से हुआ है। कई लेखक जिन्हे प्रिंट मीडिया में कोई खास तवज्जो नहीं दी जाती थी वह आजकल सोशल मीडिया में लिखकर स्थापित साहित्यकारों में शुमार होते जा रहे हैं। सोशल मीडिया के प्रभाव ने प्रिंट मीडिया के दिग्गज स्थापित प्रकाशनों के वर्चस्व को भारी चुनौती पेश कर दी है।हालांकि इसे स्वस्थ प्रतियोगिता ही मानना चाहिए जो साहित्य के विकास में सहायक ही होगी। अतः कुल मिलाकर सोशल मीडिया साहित्य की प्रगति में सहायक ही बनता जा रहा है।

सतीश शर्मा,
बाल कहानी लेखक श्रीराम नगर उज्जैन

इस माध्यम में रचे जा रहे साहित्य में उथलापन

समय के प्रवाह के साथ कई चीजें बदलती है।किसी समय बरू से लिखा जाता था। फिर दवात कलम आई और अब बाल पेन आ गया है। सोशल मीडिया का भी हमारे जीवन में इसी तरह आगमन हुआ है। इस नई पद्धति ने फायदा भी पहुंचाया है। पर कुछ विचारणीय प्रश्न भी छोड़ दिए है।

सोशल मीडिया की सहायता से बड़े बड़े साहित्यकार आम आदमी तक पहुंच रहे हैं। इसने लोगों की प्रतिभा को सबके सामने रखने का मौका दिया है। इसका दूसरा पक्ष यह भी है कि सोशल मीडिया में रचे जा रहे साहित्य में उथलापन ज्यादा है । पर्याप्त चिंतन, मनन फिर लेखन।यह रचना की प्रक्रिया है नया माध्यम इसको बाधित करता है। जल्दबाजी में लिखा और पोस्ट कर दिया। पाठक भी उतनी ही ज्यादा जल्दी में रहता है। वह महत्वपूर्ण बात को पढ़ना छोड़ कर के आगे बढ़ जाता है। उन्होंने उदाहरण देते हुए बताया कि यदि मुझे डॉक्टर हरिवंश राय बच्चन की कोई किताब पढ़ना है और वह सामने रखी है तो मैं उसको इत्मीनान से समय निकालकर पढ़लूंगा। जबकि सोशल मीडिया का प्लेटफार्म तीव्र गति से बहता है। हम इसकी तुलना बरसाती नाले के उफान से कर सकते हैं।जबकि साहित्य की प्रकृति मंथर गति से बहना है। सोशल मीडिया मनन करने योग्य चीजों को भी पास कर देता है। श्री व्यास ने रचनाकारों से अपील की है कि वे पर्याप्त चिंतन मनन के बाद रचनाओं को इस प्लेटफार्म पर लाएं तभी साहित्य का भला हो सकेगा। साथ ही पाठकों का भी यह दायित्व है कि वे चयनित सामग्री को ही पढ़े सराहे। वे कहते है कुछ भी हो जाये किताबों से मुंह नहीं मोड़ सकते। साहित्य को स्क्रीन पर पढ़ना उतना आनंददायी नहीं हो सकता। जितना किताबों को पढ़ना। गंभीरता पूर्वक पढ़ने के लिए किताबें ही हमें प्रेरित करती रहेंगी। लेकिन आधुनिक युग में सोशल मीडिया की आवश्यकता को भी नकार नहीं सकते ।

कैलाश व्यास,
विधि विशेषज्ञ, हिंदी कविता,
उर्दू शायरी के रसिक, प्रसिद्ध सूत्रधार रतलाम।

किताबों में कैद साहित्य इस माध्यम से जन-जन तक पहुंचा है

पेशे से चिकित्सक डॉ अजय जैन को साहित्य प्रेम विरासत में मिला है उनके माता-पिता दोनों ही हिंदी साहित्य के शिक्षक रह चुके हैं। वे बरसों से साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ते रहे हैं। साहित्यिक रचनाओं में रूचि लेते रहे हैं और आज भी बड़े-बड़े शायरों कवियों की किताबों से कुछ मोती चुन कर रोजाना सुबह फेसबुक और अन्य सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर पोस्ट करते हैं। वे कहते हैं कि यह साहित्य के ऐसे मोती हैं जो सुबह-सुबह लोगो के चेहरे पर मुस्कान ला देते हैं। बड़ी संख्या में उनसे जुड़े साथी उनकी पोस्ट का इंतजार करते हैं . यह पूछने पर कि सोशल मीडिया और साहित्य का क्या संबंध किस तरह परिभाषित होगा। जिस तरह से सोशल मीडिया ने सारे प्लेटफार्म को

आच्छादित कर दिया है उससे साहित्य के सृजन पर क्या असर होगा। डॉक्टर जैन कहते हैं कि साहित्य जो वर्षों से किताबों में कैद था वह सोशल मीडिया के माध्यम से जन-जन तक पहुंच रहा है।उन्होंने कहा कि साहित्यिक रचनाओं का मर्म समझने वालों ने साहित्यकारों के संदेश को प्रसारित करने का कार्य इस नए प्लेटफार्म पर बखूबी किया है.

डॉक्टर जैन का मानना है कि सोशल मीडिया के आने से साहित्यकारों को डरने की आवश्यकता नहीं है। साहित्य का सृजन निरंतर बना रहना चाहिए।अच्छी चीजें सामने आना चाहिए। वे कहते हैं कि अब साहित्य को समझने पढ़ने के लिए किताबों को रखने की आवश्यकता नहीं है। सोशल मीडिया पर बड़े-बड़े साहित्यकारों की साहित्यिक रचना छोटे-छोटे टुकड़ों में हर कहीं मिल जाती है। वे कहते हैं कि शायरी एक शेर में या कविता की चार लाइन वह बातें कह देती हैं जिनमें जीवन का सार छुपा होता है।उसके लिए किताबों की आवश्यकता नहीं है। आज घर-घर में गुलजार,राहत इंदौरी,बशीर बद्र,मुनव्वर राणा जैसे शायर की शायरी गूंज रही है तो इसका कारण सोशल मीडिया ही है।इनका मानना है कि सोशल मीडिया ने साहित्य को ही मकबूल किया है ।डॉक्टर जैन का मानना है कि जो खजाना किताबों में छिपा है यदि वह सोशल मीडिया के माध्यम से बाहर आता है तो इसमें बुराई क्या है। इसमें किसी को घबराने की आवश्यकता नहीं है। वे कहते हैं कि चिकित्सकीय व्यवसाय से जुड़े होने के कारण लेखन का गंभीर कार्य तो नहीं कर पाते है लेकिन किताबों में, दीवानों में छुपी हुई शायरी और कविता की लाइनें चुन-चुन कर पाठ को तक पहुंचाते हैं। लोग इनको पढ़कर इनसे प्रेरणा लेते हैं। उनका मानना है यदि यह प्लेटफार्म नहीं होता तो संप्रेषण करने के लिए कोई बड़ा साधन उपलब्ध नहीं था इसलिए सोशल मीडिया को आत्मसात करते हुए गंभीर लेखन करने वाले लोगों को इससे जोड़ना चाहिए तथा अपना एक पाठक वर्ग तैयार करना चाहिए।

डॉ अजय जैन,
वरिष्ठ चिकित्सक उज्जैन, साहित्यप्रेमी एवम शायर

सोश्यल मीडिया ने साहित्य को बड़ा मंच दिया है

सोशल मीडिया का व्यापक अर्थ है,सामाजिक असर भी उतना ही व्यापक। अब हम आज के डिजिटल युग में सोशल मीडिया का साहित्य पर असर देखते हैं तो मुझे इसके सकारात्मक प्रभाव ज्यादा दिखते हैं। नकारात्मक कम ।क्योंकि साहित्य को सोशल मीडिया ने बड़ा मंच दिया है साहित्य में रूचि होने के बाद भी कितने ही पाठक समय की अल्पता के कारण पढ़नहीं पाते थे। ऐसे पाठक भी फेसबुक, ब्लॉग, ट्विटर, यूट्यूब जैसे प्लेटफार्म से कहीं पर भी किसी भी समय साहित्य पढ़सकते हैं लिख सकते हैं। पाठक कमियों और खूबियों पर भी ध्यान आकर्षित कर सकता है। सोशल मीडिया से कई प्रतिभाओं को पनपने का अवसर मिला है। लेखक कविता, कहानी, लघु कथाओं के माध्यम से पुरानी मान्यताओं को बदलने का प्रयास कर सकते हैं।

आजकल की भागदौड़ वाली जिंदगी में पुस्तक प्रेमी चाह कर भी लाइब्रेरी नहीं जा सकता। पुस्तके खरीदना भी हर एक के लिए संभव नहीं हो पाता है। भावी पीढ़ी पत्र लेखन भी नहीं जानती।वह प्रेमचंद को क्या समझेगी। वंही प्रेमचंद सोशल मीडिया के माध्यम से पढ़े जाते हैं। अपनी बात को संक्षेप में रखते हुए यही कहना चाहती हूँ कि साहित्य पर सोशल मीडिया का प्रभाव सकारात्मक ही है।

रूचि आशीष नेमा,
कहानी, लघुकथा लेखिका इंदौर

अगले अंक में पढ़िये ग्वालियर
क्षेत्र के कुछ प्रबुद्धजनों के विचार

समावर्तन की वार्षिक सदस्यता हेतु

- समावर्तन की वार्षिक सदस्यता ग्रहण करने हेतु रूपये 1500/- नियत है जो मनिआर्डर से अथवा चेक से भेजे जा सकते हैं। चेक पर केवल 'समावर्तन' लिखना होगा। चेक और मनिआर्डर डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य, 'अक्षय-माधवी' 129, दशहरा मैदान, उज्जैन 456010 के पते पर भेजना होगा।
- समावर्तन की वार्षिक सदस्यता का शुल्क डिजिटल माध्यम से भी भुगतान किया जा सकता है। जिसके लिए बैंक डिटेल्स निम्नानुसार है। **बैंक का नाम -** आयडीबीआय, **ब्रांच का नाम -** फ्रीगंज ब्रांच, उज्जैन, **खाता क्रमांक -** 0088102000031620, **खातेदार का नाम -** समावर्तन
  आयएफएससी नं.- आयबीकेएल 0000088, एमआयसीआर-456259002
- डिजिटल एवं चेक/मनिआर्डर से भुगतान करने पर तदनुसार पत्र द्वारा सूचित करने का कष्ट करें। रजिस्टर्ड डाक से अंक मंगाने पर रूपये 300/- पृथक से देने होंगे।

संपादक, समावर्तन, उज्जैन - संपर्क - 94259-15010

नीलांबर द्वारा रेणु की शतवार्षिकी पर आयोजन

अररिया, रेणु ग्राम में आंचलिकता को हिंदी में स्थापित करने वाले अलबेले कथाकार फणीश्वर नाथ रेणु का उनकी जन्मभूमि पर सौवीं जयंती कोलकाता की साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्था नीलाम्बर द्वारा मनायी गयी। हिंदी के एक बड़े रचनाकार की जन्मभूमि पर किया गया यह कार्यक्रम उस अंचल के लोक को समर्पित और संबोधित रहा। इस समारोह का उद्घाटन रेणु जी के वरिष्ठ पुत्र-द्वय श्री पद्म पराग और श्री अपराजित के द्वारा किया जाना महत्त्वपूर्ण रहा। कार्यक्रम में भाग लेनेवाले अतिथि के रूप में श्री विनय कुमार, श्री राकेश बिहारी, श्री राजेश कमल एवं जिला प्रशासन के कई वरिष्ठ अधिकारी गण उपस्थित थे। रेणु के इस शतवार्षिकी समारोह का मुख्य आकर्षण रहा नीलाम्बर द्वारा निर्मित संवदिया फिल्म की पहली स्क्रीनिंग। यह फिल्म रेणु जी की इसी नाम से चर्चित कहानी पर आधारित है। इस फिल्म के अधिकतर हिस्से की शूटिंग रेणु जी के जन्म-अंचल में ही की गई है इसलिए भी इस फिल्म के प्रति वहां के लोगों का आकर्षण स्वाभाविक था। अतः सभागार में बैठे सभी दर्शक भावुकता के साथ फिल्म में अपने आपको ढूंढने की कोशिश में दिख रहे थे। श्री पद्म पराग ने समकालीन संदर्भों में अपने पिता के लेखन को देखने-समझने की बात कही। संवदिया पर अपनी बात रखते हुए उन्होंने कहा कि आज समाज में किसी स्त्री का संवदिया की बड़ी बहुरिया की स्थिति में जीना कचोटता और कसकता है। यह समाज के लिए शर्मिंदगी की बात है। श्री अपराजित ने अपने पिता के जीवन को आज के समय के गांव की स्थिति के साथ जोड़ कर देखने की बात कही। उन्होंने जोर देकर कहा कि साहित्य समाज के लिए लिए होना चाहिए, जनता के लिए होना चाहिए।

कार्यक्रम का संचालन ममता पांडेय ने किया। धन्यवाद ज्ञापन डॉ मंटू कुमार ने किया है। कार्यक्रम में श्री रीतेश कुमार, विशाल पांडेय, अभिषेक पांडे, मनोज झा, आदित्य प्रियदर्शी की भूमिका सराहनीय रही!

प्रस्तुति : आनंद गुप्ता

निधि जैन एवं गरिमा दुबे पुरस्कृत

भोपाल। गत दिनों वामा साहित्य मंच (इंदौर) की निधि जैन को रानी रूपमति और बाज बहादुर की प्रेम कहानी पर लिखे उनके उपन्यास (रेवा में बहते मयूर पंख) के लिए श्री श्यामलाल सोनी स्मृति पुरस्कार और गरिमा दुबे को उनके कहानी संग्रह (दो ध्रुवों के बीच) के लिए श्री ब्रह्मदत्त तिवारी स्मृति पुरस्कार से सम्मानित किया गया। ज्ञातव्य है कि हिन्दी भवन (भोपाल) में हिन्दी लेखक संघ म.प्र.(भोपाल) राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के सौजन्य से संस्था का वार्षिक महोत्सव संपन्न हुआ। इस कार्यक्रम के मुख्य अतिथि पद्मश्री डॉ.कपिल तिवारी, सारस्वत अतिथि कैलाशचंद्र पंत थे। डॉ.विनय की अध्यक्षता एवं संस्था अध्यक्ष श्रीमती अनिता सक्सेना जी के आतिथ्य में देशभर की हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं में कार्य करने वाली करीब 25 महिलाओं को उनकी उल्लेखनीय कृति के लिए सम्मानित एवं पुरस्कृत किया गया।

अपनी तलाश में ग़ज़ल संग्रह का लोकार्पण

कांकरोली। गत दिनों राजस्थान साहित्य परिषद के तत्वावधान में ग़ज़लकार शैख अब्दुल हमीद के नये ग़ज़ल संग्रह 'अपनी तलाश में' का लोकार्पण साहित्यकार आविद अदीब, माधव नागदा एवं त्रिलोकी मोहन पुरोहित के आतिथ्य में संपन्न हुआ। अतिथि स्वागत श्री राधेश्याम सरावगी 'मसूरिया' ने किया तथा स्वागत उद्बोधन 'संबोधन' के पूर्व संपादक श्री कमर मेवाड़ी ने देते हुए विशेष रूप से शेख अब्दुल हमीद के एक शेर का उल्लेख किया- *''वफ़ा, खलुस, मोहब्बत का ये असर हो जाए, ये काइनात सिमट कर एक घर हो जाये।''* समारोह में वरिष्ठ साहित्यकार ईश्वरचंद्र शर्मा, प्रमोद सनाढ्य, अफ़जल खां अफजल मोहम्मद रिज़वी, किशन कबीरा, रवीद्रसिंह मेहता, मुरलीधर कनेरिया, सुधा मेहता, मुबारक खां खंजर, कल्याणसिंह पगारिया, नारायणसिंह राव, पं.उमाशंकर दाधीच, परितोष पालीवाल, ज्योत्सना पोखरना, कुसुम अग्रवाल, चतुर कोठारी आदि साहित्यकारों, प्रबुद्धजनों एवं साहित्य प्रेमियों की महत्त्वपूर्ण भागीदारी कार्यक्रम का संचालन डॉ.नरेन्द्र निर्मल ने किया तथा आभार प्रदर्शन राजस्थान साहित्यकार परिषद कांकरोली के अध्यक्ष नगेन्द्र कुमार मेहता ने ज्ञापित किया।

प्रस्तुति : कमर मेवाड़ी

यह बहुत हर्ष का विषय है कि हिन्दी कथा-साहित्य के हम सब रसिक और अनुरागी कुछ समय से धारावाहिक रूप से ''कथा देश'' पर चर्चा के माध्यम से भारतीय कथा-परम्परा, उसके स्त्रोत, उसके उद्‌भव से लेकर उसके विराट आंदोलन बनने की स्थिति और अब अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान स्थापित करने की दिशा में कीर्तिमान उपलब्धि का जायजा इन पृष्ठों में अविराम ले रहे हैं। निस्संदेह ''विश्व रंग'' के अवसर पर समवेत रूप से स्वीकार किए गए चार्टर की प्रतिज्ञाओं के अनुरूप कथा-साहित्य की प्रवृत्तियों और धारणाओं को ऐतिहासिक परिवेश में समकालीन चिन्ताओं से संलग्न कर पुनराविष्कार का एक अद्‌भुत स्वप्न ''कथा देश'' में साकार हुआ जिसकी महत्वपूर्ण भूमिका वरिष्ठ साहित्यकार और संस्कृतिकर्मी संतोष चौबे ने हिन्दी कथा-साहित्य के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए उसकी बुनियादी रचनात्मकता और जीवंत शक्ति को रेखांकित किया।

पिछले अंक में हिन्दी कहानी के आधुनिक रूप में प्रगटीकरण को लेकर संतोष जी कहते हैं कि हिन्दी में 'कहानी' का आरंभ कब से या किस रचना से माना जाए, इसका किंचित विश्वसनीय उत्तर तभी दिया जा सकता है, जब 'कथा' और 'कहानी' के अंतर को ध्यान में रखकर निर्णय लिया जाए कि किस प्रारंभिक कथा-रचना में 'कहानी' का भेदक गुण प्रथम बार दिखाई देता है। सम्प्रति हिन्दी आलोचना में 'कहानी' पद उस गद्यविधा के लिए स्वीकृति प्राप्त कर चुका है, जिसे अँगरेजी में 'शार्ट स्टोरी' कहते हैं और जो हिन्दी में बीसवीं सदी के प्रारंभ में अस्तित्व में आयी।

हिन्दी की 'प्रथम कहानी' कौन है, यह प्रश्न विवादास्पद है और अनावश्यक भी। बीसवीं सदी के आरंभ में, जबकि 'कहानी' विधा अस्तित्व में आयी थी, उसका आविर्भाव किसी बिजली की चमक जैसा नहीं हो गया था। अँगरेजी की 'शार्ट स्टोरी' और कदाचित् बँगला की 'गल्प' (जो स्वयं भी 'शार्ट स्टोरी' से ही प्रेरित-प्रभावित थी) नामक विधा से अनुप्रेरित-प्रभावित होने पर भी उसका अपने आन्तरिक नियमों से ही विकास हुआ था। उस काल में 'कहानी' की कोई सुनिश्चित पहचान नहीं बनी थी-यहाँ तक कि इसके लिए कोई संज्ञा तक सुनिश्चित नहीं थी। सरस्वती में इसके लिए 'आख्यायिका' पद का प्रयोग आरंभ हुआ, जिसे सुदर्शन, वैश्योपकारक, इन्दु और कुछ दूसरी पत्रिकाओं ने भी अपनाया, पर 'मर्यादा' में बँगला साहित्य के अनुकरण पर इसके लिए 'गल्प' पद प्रयुक्त हो रहा था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को इनमें से को भी नाम न जँचा और उन्होंने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'छोटी कहानी' पद का प्रयोग किया और उसके रूप-विधान पर किंचित गंभीरता से विचार भी किया। हिन्दी कहानी के उद्‌भव के प्रथम दशक की कहानियों को शुक्ल जी द्वारा निर्दिष्ट विधान पर ही विवेच्य माना जा सकता है।

हिन्दी की पहली मौलिक 'गद्यकथा' सैयद इंशा अल्ला खाँ रचित रानी केतकी की कहानी (रचना काल लगभग 1803) मानी जाती है। पर यह आधुनिक 'कहानी' नहीं है। क्योंकि इसमें 'घटनाएँ' भी हैं और समयानुक्रम में निबद्ध घटनाओं की शृंखला भी। 1900-1905 की कहानियों में माधवराव सप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी' पाश्चात्य कहानी की अवधारणा के सबसे निकट दिखाई पड़ती है। आश्चर्यजनक रूप से यह उन्नीसवीं शताब्दी में उर्दू-हिन्दी में प्रकाशित समस्त गद्यकथाओं से प्रकृतितः भिन्न है। यह लगभग 600 शब्दों की छोटी सी कहानी है, जिसमें एक गरीब असहाय विधवा के स्वाभिमान की संवेदना का क्षण ही रोशनी के केन्द्र में है। पृष्ठभूमि के रूप में जमींदार द्वारा उसकी झोपड़ी को हड़पने, स्त्री द्वारा जमींदार के पास जाकर अपनी जमीन से एक टोकरी मिट्टी भरने और उसे अपने सिर पर उठा देने के अनुरोध की कथा है। इस पृष्ठभूमि पर टिमटिमाते दीप के रूप में है उसका स्वाभिमान भरा कथन, जिसे सुनकर जमींदार निरूत्तर हो जाता है। यही 'कथन' इस कहानी को 'कहानी' बनाता है। समकालीन सामन्ती शोषण का तल्ख चित्रण इस कहानी की दूसरी उल्लेखनीय विशेषता है। कहानी की संरचना 'कथक' द्वारा वर्णन की ही है, पर वह इतना बेलौस, सीधा और मारक है कि पाठक उसके प्रभाव से अभिभूत हुए बिना नहीं रहता। इसकी भाषा संस्कृत या फारसी मिश्रित हिन्दी से भिन्न, ठेठ देसी हिन्दी है। इस प्रकार 'संवेदना के क्षण' की अभिव्यक्ति की दृष्टि से 'एक टोकरी भर मिट्टी' को 'हिन्दी की प्रथम कहानी' के रूप में मान्यता दी जा सकती है। इस काल की अन्य कहानियों को 'आकार की लघुता' और 'कथ्य की विशेषता' के आधार पर ही 'कहानी' की संज्ञा देने का औचित्य ठहर सकता है। (गोपाल राय)

बीसवीं सदी का पहला दशक हिन्दी कहानी का भी पहला दशक कहा जा सकता है। किसी विधा के आरंभिक दौर में कथ्य और शिल्प विषयक जो अस्थिरता हो सकती है, वह इस दशक की कहानियों में भी देखने को मिलती है। कहानीकारों के सामने अँगरेजी की 'छोटी कहानी' का आदर्श तो शायद था, पर उसके अनुरूप न तो कथा भाषा विकसित हुई थी, न ही यथार्थ की संवेदना। देश एक विदेशी शक्ति का उपनिवेश था और विचारों तथा भावनाओं की अभिव्यक्ति पर तमाम तरह की पाबन्दियाँ लगी हुईं थीं। हिन्दी में प्रबुद्ध पाठकों और लेखकों का भी अभाव ही था। आधुनिक ढंग से शिक्षित लोगों में शासन द्वारा औपनिवेशिक शासन के प्रति 'राजभक्ति' पैदा करने की कोई कोशिश छोड़ी नहीं जाती थी। समाज का समृद्ध वर्ग-सामन्त, जमींदार और महाजन, व्यवसायी समुदाय-औपनिवेशिक शासन का दाहिना हाथ बनकर अपने स्वार्थ की सिद्धि में लगा हुआ था। मध्यवर्ग, जो व्यवस्था के विरूद्ध खड़ा हो सकता था, अभी अपने निर्माण के आरंभिक दौर में ही था। फिर भी मध्यवर्ग से ही माधव राव सप्रे, मास्टर भगवान दास, गिरिजादत्त वाजपेयी, बंग महिला, और सबसे बढ़कर नवाब राय जैसे लेखक वजूद में आ रहे थे, और उनके साथ ही कहानी के लिए आवश्यक संवेदना भी अस्तित्व में आ रही थी। इसका प्रमाण दूसरे दशक की कहानियों में मिलने लगता है। (गोपाल राय)''

संतोष जी इस संदर्भ में आगे बताते हैं कि ''आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'सरस्वती' में प्रकाशित कुछ मौलिक कहानियों का उल्लेख किया हैः

1. किशोरी लाल गोस्वामी की 'इन्दुमति' (1900) और 'गुलबहार' (1902)
2. मास्टर भगवानदास (मिरजापुर) का 'प्लेग की चुड़ैल' (1902)
3. रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' (1903)
4. गिरिजादत्त वाजपेयी की 'पंडित और पंडितानी' (1903)
5. बंगमहिला की 'दुलाई वाली' (1907)''

यह एक रोचक प्रसंग है जब हम हिन्दी की शुरूआती कहानियों के बारे में और आज की ताजा अधुनातन कहानी तक पहुँचने की यात्रा का विवरण एक ऐतिहासिक संस्मरण के तौर पर जानेंगे। अगली बार फिर मिलियेगा और अपनी हिन्दी के साहित्यिक सफर में शामिल होकर अपने अतीत के साक्षी बनें ताकि भविष्य में इस मशाल को आपके सशक्त हाथों का सुखद सहारा मिल सके। आमीन।

मुकेश वर्मा

मोबाइलः 94250-14166

श्री नरेन्द्रभाई मोदी
प्रधानमंत्री, भारत

सत्यमेव जयते
गुजरात सरकार

गुजरात सरकार द्वारा गंगा स्वरूपा बहनों को आर्थिक सहायता

श्री विजयभाई रूपाणी
मुख्यमंत्री, गुजरात राज्य

लाभार्थी के लिए इस योजना से प्रतिमाह रू. 1250/- की आजीवन सहायता

पात्रता विवरण

- 18 वर्ष से अधिक उम्र की निराधार विधवा
- आवेदक के परिवार की वार्षिक आय रू. 1,20,000/- (ग्रामीण क्षेत्र) और रू.1,50,000/- (शहरी क्षेत्र) से अधिक नहीं होना चाहिए

"गंगा स्वरूपा बहनों को आर्थिक सहायता हेतु राज्य सरकार कटिबद्ध"
- श्री नीतिनभाई पटेल,
उप मुख्यमंत्री, गुजरात

अधिक जानकारी हेतु अपने जिले के महिला एवं बाल अधिकारी/संबंधित विभाग से संपर्क करें

महिला एवं बाल विकास विभाग
गुजरात सरकार

महिला विंग
महिला एवं बाल विकास
कमिश्नर कार्यालय गांधीनगर

ATTRACTIONS »
5 STATIONS WITH INFOTAINMENT

COME VISIT
CHILDREN
Nutrition Park

Tickets Available!
Adults: Rs 200 per person
Children from 3-12 years: Rs 125
Free for Children Below the Age of 3

CHILDREN NUTRITION PARK
Kevadia, Gujarat

ACTION PACKED ACTIVITIES

- Electric Train
- Mirror Maze
- Nutrihunt
- Game Zone
- Mystic Tunnel
- AR/VR Theatre

Gujarat Ecology Commission
Government of Gujarat

Tickets Can be Purchased From the Counter at Ekta Junction!